प्रौढ़-शिक्षा की योजना

[श्रीयुत अनन्त-बापूजी माण्डे एम्० ए० (अमेरिका)

की

A Scheme of Adult Education

के आधार पर लिखित]

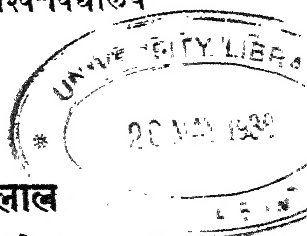
लेखक

पण्डित भगवतीप्रसाद बाजपेयी

सम्पादक

प्रो० दयाशंकर दुबे एम्० ए०, एल्-एल्-बी०

अर्थशास्त्र-अध्यापक प्रयाग-विश्व-विद्यालय



प्रकाशक

रामनारायण लाल

पब्लिशर और बुकसेलर

इलाहाबाद

प्रथमबार] १९३८ [मूल्य ॥)

विषय-सूची

भूमिका

गाँवों के घर-घर, कोने-कोने में, जीवन और जाग्रति की ज्योति पहुँचाने की भावना को लेकर, शिक्षा के दृष्टिकोण से, युक्तप्रान्त की प्रौढ़-पाठशालाओं के अध्यापकों के लिए, मैंने A Scheme of Adult Education नामक पुस्तक लिखी थी। इस पुस्तक की रचना मेरी इसी पुस्तक के आधार को लेकर की गयी है और मैं प्रसन्नता के साथ यह स्वीकार करता हूँ कि मेरे भावों और विचारों को लेखक (हमारे मित्र पण्डित भगवतीप्रसाद वाजपेयी) ने बड़ी सतर्कता और सजीवता के साथ ग्रहण किया है और उनके स्पष्टीकरण में उन्हें यथेष्ट सफलता मिली है। मुझे पूर्ण आशा है कि प्रौढ़-पाठशालाओं के अध्यापक इस पुस्तक के द्वारा, मेरी योजना को मूल रूप में ही ग्रहण कर सकेंगे।

प्रयाग
६-११-३७

अनन्त बापूजी माण्डे

सम्पादकीय वक्तव्य

इस पुस्तक के लेखक हैं पंडित भगवतीप्रसादजी वाजपेयी, जिन्होंने अपनी कहानियों के द्वारा हिन्दी-संसार में उच्च स्थान प्राप्त कर लिया है। परन्तु यह पुस्तक उनकी कहानियों का संग्रह नहीं है। इस पुस्तक में प्रौढ़ों की शिक्षा का एक सरल, सस्ता और व्यावहारिक तरीक़ा विस्तार-पूर्वक समझाया गया है। जिस अंग्रेज़ी पुस्तक के आधार पर यह योजना लिखी गई है उसके लेखक हैं श्रीयुत अनन्त-आपूजी माराडे एम्० ए०। आपने सुदूर अमेरिका में कुछ वर्ष बिताकर शिक्षा-सम्बन्धी विषयों पर अनेक विशेषज्ञों की देख-रेख में अध्ययन किया है और शिक्षा विषय में ही एम्० ए० की डिग्री वहाँ के कोलम्बिया विश्व-विद्यालय से प्राप्त की है। अमेरिका से लौटने पर, मध्यप्रान्त के जेलों में, अपढ़ क़ैदियों पर, अपनी योजना का सफलतापूर्वक प्रयोग आपने कर दिखाया है। गत ८ वर्षों से आप, युक्तप्रान्त के सहकारी विभाग में, प्रौढ़ों की शिक्षा का प्रचार, इस पुस्तक में दी हुई योजना के अनुसार, बड़ी सफलतापूर्वक कर रहे हैं। इस प्रकार जिस विषय पर मूल अंग्रेजी पुस्तक लिखी गई है, उसके लेखक को अपने विषय का सिद्धान्तिक और व्यावहारिक ज्ञान पूर्ण रूप से है। मुझे विश्वास है कि इस पुस्तक में दी हुई प्रौढ़-शिक्षा की योजना बहुत सस्ती और व्यावहारिक है। इसी लिए मैं यह चाहता हूँ कि भारत के कोने-कोने में इसका शीघ्र

प्रचार हो। पंडित वाजपेयीजी ने हिन्दी में इस पुस्तक को लिखकर अंग्रेज़ी न जाननेवालों को इस सुन्दर योजना का ज्ञान सुलभ कर दिया है।

भारत में ऐसे व्यक्तियों की संख्या, जो निरक्षर भट्टाचार्य्य हैं—अर्थात् जो लिखना-पढ़ना कुछ नहीं जानते—९० प्रति सैकड़ा है। अक्षर-ज्ञान-हीन प्रौढ़ों की संख्या बहुत ही अधिक है। इन प्रौढ़ों की शिक्षा की ओर हमारी प्रान्तीय सरकारों ने उचित ध्यान नहीं दिया। अब नये विधान के अनुसार प्रान्तों में स्वराज्य की स्थापना हो गई है और शिक्षा-प्रचार का पूर्ण उत्तरदायित्व प्रान्तीय शिक्षा-मंत्रियों और प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं के निर्वाचित सदस्यों पर आ गया है। बिना प्रौढ़ों में शिक्षा-प्रचार किये देश की आर्थिक या राजनैतिक उन्नति सम्भव नहीं है। प्रान्तीय सरकारों को प्रौढ़-शिक्षा-प्रचार का कार्य्य दत्तचित्त होकर करना होगा और उनको इस पुस्तक में दी हुई व्यावहारिक योजना से अवश्य लाभ होगा। इसीलिए मैं भारत की प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं के सदस्यों और शिक्षा-मंत्रियों से आग्रह पूर्वक सिफ़ारिश करता हूँ कि वे इस पुस्तक में दी हुई योजना पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने की कृपा करें।

इस योजना की एक विशेषता यह भी है कि इसका उपयोग—कुछ थोड़े परिवर्तन के बाद—उर्दू, बँगला, मराठी, गुजराती इत्यादि सिखाने के लिए भी किया जा सकता है। इसके सिवा सस्ती होने के साथ ही साथ वह प्रौढ़ों को केवल अक्षर-ज्ञान ही नहीं प्राप्त कराती, वरन् उन्हें एक वर्ष के अन्दर ही उत्तम नागरिक बनाने में भी सहायक होती है। अक्षर-ज्ञान तो इस योजना के अनुसार चार या पाँच सप्ताह में ही प्राप्त किया जा सकता है। इस योजना के अनुसार एक वर्ष में, प्रौढ़ लोग आवश्यक विषयों में उतना ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, जितना बालक प्रारंभिक पाठ-

शालाओं में क़रीब चार-पाँच वर्षों में प्राप्त कर पाते हैं।

इस पुस्तक में जो कुछ अच्छाई है उसका श्रेय श्रीमान् माण्डे-जी और श्रीमान् वाजपेयी जी को है। मैं तो इसकी त्रुटियों के लिए पूर्णरूप से जिम्मेदार हूँ। यदि इसकी त्रुटियों की तरफ़ कोई सज्जन मेरा ध्यान आकर्षित करने की कृपा करेंगे तो दूसरे संस्करण में वे दूर कर दी जायँगी।

यदि यह पुस्तक प्रौढ़ों में शिक्षा-प्रचार करने में थोड़ी भी सहायक हुई तो हम लोग अपने प्रयत्न को सफल समझेंगे।

दारागंज, प्रयाग
१—१—३८

दयाशंकर दुबे
एम. ए., एल-एल. बी.
अर्थशास्त्र-अध्यापक, प्रयाग-
विश्वविद्यालय।

प्रौढ़-शिक्षा की योजना

पहला अध्याय

सामाजिक परिवर्तन और प्रौढ़-शिक्षा की आवश्यकता

जो शिक्षा-प्रणाली समाज की रचना, स्थिति, रूढ़ि आदि का विचार करके नहीं बनाई जाती, वह देश के पुनरुद्धार के लिए सर्वथा निरर्थक सिद्ध होती है। प्राचीन काल की समाज-रचना अभी तक पूर्णतया नष्ट नहीं हुई। निर्विवाद रूप से यह कहा जा सकता है कि प्रचलित शिक्षा-प्रणाली सामाजिक अभ्युत्थान के लिए यथेष्ट नहीं है। आज से सौ वर्ष पूर्व शिक्षा देने की पद्धति क्या थी और उसमें तत्कालीन भारतीय समाज की समस्याओं के हल करने की क्षमता थी या नहीं, यहाँ हमें यह देखना है।

उस ज़माने में बड़े-बड़े नगरों और तीर्थ-स्थानों में अनेक संस्कृत पाठशालाएँ होती थीं। उन पाठशालाओं में उच्च जाति के हिन्दू नवयुवक शिक्षा प्राप्त करने के लिये जाते थे। वे वहाँ से व्याकरण, दर्शन, साहित्य, काव्य और संहिता आदि में विशारद होकर निकलते थे। वे विद्यालय किसी राजा या शिक्षा-विभाग के अधीन रहकर कार्य करने में इतने सीमित नहीं रहते थे। उनमें पठन-पाठन के प्रेमी द्रव्यार्जन के लिए नहीं, वरन् ज्ञानार्जन की अभिलाषा से जाते थे। वे वहाँ २५ वर्ष की अवस्था तक विद्याध्ययन करते थे। वे विद्यालय उसी ढंग के

होते थे, जिसे आजकल हम विश्व-विद्यालय कहते हैं। छोटे-छोटे गाँवों और शहरों में साधारण पाठशालाएँ होती थीं, जिनमें ब्राह्मणों के लड़के संस्कृत पढ़कर कर्मकाण्ड की उच्च शिक्षा प्राप्त करते थे। इसी प्रकार मुसलमान लड़के प्रायः मकतबों में अपनी शिक्षा प्राप्त करते थे। ये मकतब और पाठशालाएँ वर्तमान हाईस्कूलों तथा मिडिलस्कूलों के समान होती थीं। इनके सूत्रधार सामान्य रूप से मन्दिरों के पुरोहित या मस्जिदों के अधिपति रहते थे। इन पाठशालाओं और मकतबों का मुख्यध्येय अपने-अपने धर्मानुयायियों को धर्मपथ पर आरूढ़ रखना मात्र होता था। इसीलिए उन्हें वहाँ केवल धर्म की शिक्षा दी जाती थी। उपर्युक्त दो प्रकार के स्कूलों को बड़े-बड़े पंडितों, पुरोहितों और मुल्लों का ट्रेनिङ्ग स्कूल कहें, तो अनुचित न होगा।

इसके अतिरिक्त एक तीसरे प्रकार की शिक्षा-प्रणाली भी उस समय प्रचलित थी। वह बहुत कुछ आजकल के डिस्ट्रिक्ट बोर्डों की शिक्षा-प्रणाली के समान थी। अन्तर इतना ही था कि वे पाठशालाएँ राजकीय सहायता की दृष्टि से निराश्रित रहती थीं। परन्तु आजकल डिस्ट्रिक्ट-बोर्डों के शिक्षणालय राजकीय सहायता पर अवलम्बित रहते हैं। उस समय राज्य-शासन में शिक्षा का कोई विशेष विभाग न था और न पाठ्यक्रम निश्चित करने का कोई राजकीय आयोजन रहता था। लेकिन यह बात भी कम गौरव की नहीं प्रतीत होती कि निरीक्षकों के अभाव में भी तत्कालीन शिक्षा समयानुसार अच्छी थी।

उस समय साधारणतया गाँव के ज़मींदार या महाजन अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए छोटी-छोटी पाठशालाओं से उत्तीर्ण पंडितों को बुलाते थे। वे अध्यापकों के रहने के लिए मकान और भोजन का प्रबन्ध करते थे। पाठशालाएँ बहुधा ज़मींदार या महाजन की चौपाल या गाँव के शिवालय में लगती थीं अथवा

कभी-कभी बरगद, पाकर या इमली के वृक्ष की छाया में। इन पाठशालाओं में केवल ज़मींदार और बनियों के लड़के ही न पढ़ते थे। बल्कि उनमें अन्य ग्राम-निवासियों के लड़के तथा उच्चवर्ग के घरों की बालिकाएँ भी पढ़ती थीं। लड़कों के माँ-बाप निश्चित अनाज शुल्क के रूप में अध्यापकों को देते थे। पाठ्यपुस्तकें भी निश्चित-सी रहती थीं। जो पुस्तकें समीपवर्ती पाठशालाओं में चलती थीं, वही वहाँ भी प्रचलित रहती थीं। पाठशालाओं में साधारणतया लिखना-पढ़ना और हिसाब पढ़ाया जाता था। इन स्कूलों की शिक्षा का उद्देश्य केवल इतना ही था कि छात्रों को चिट्ठी-पत्री का साधारण ज्ञान, रामायण तथा महाभारत का पढ़ना तथा बनियों के बालकों को मुड़िया में अपना हिसाब लिखना आ जाय। सम्भव है, इन पाठशालाओं में दलित और अछूत जातियों के लड़के न पढ़ते रहे हों। इसका विशेष कारण यह था कि शिक्षा-प्राप्ति से उन्हें कोई आर्थिक लाभ न था। इन पाठशालाओं के सम्बन्ध में दो विशेष बातें हम पाठकों के सामने उपस्थित करना चाहते हैं—

(१) इनका निरीक्षण करने के लिए बाहरी अधिकारी कोई न रहता था और इस अभाव में भी स्कूलों की दशा सन्तोषजनक थी। इसका प्रधान कारण यह था कि स्कूल चलाने की ज़िम्मेदारी गाँव के ज़मींदार और महाजन पर रहती थी। यदि वे अध्यापक से असन्तुष्ट होते थे, तो दूसरा बुला लेते थे।

(२) दूसरी बात यह थी कि वे अपने बच्चों के लिए शिक्षा की उपयोगिता समझकर अध्यापक को शुल्क के रूप में बहुत कुछ दे देते थे। ऐसी पाठशालाएँ सारे भारतवर्ष में, देश के कोने-कोने में फैली रहती थीं। उस समय शिक्षकों को महाराष्ट्र में 'तात्या पंतोजी' बङ्गाल में 'गुरु महाशय' और युक्त-प्रान्त में 'गुरु जी' या 'भैया जी' कहते थे। इस सम्बन्ध में सन् १८३८ ई० में

लिखी गई बङ्गाल-प्रान्तीय पाठशालाओं के सम्बन्ध में श्री डबल्यू एडेम्स की रिपोर्ट में अच्छा प्रकाश डाला गया है। अस्तु, हमें यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है कि देश-काल के अनुसार यह प्रणाली बुरी न थी।

यहाँ यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि बच्चों की शिक्षा यहीं समाप्त न हो जाती थी। उस समय गाँव-गाँव में कथा-वाचक तथा कीर्तनकार साधू-सन्त घूमते रहते थे। वे अपनी कथाओं से आध्यात्मिक विचारों का प्रचार करते थे। इस रीति से सामान्य जनता का विचार-क्षेत्र विकसित होता था। खेद है कि इस युग में कथावाचकों, कीर्तनकारों और पौराणिकों का विलोप-सा हो गया है। इसके स्थान पर सांस्कृतिक ज्ञान-प्रसार के लिए पाश्चात्य शिक्षा के द्वारा हमारे जीवन में इन तीन साधनों ने प्रवेश पा लिया है—

(१) समाचार-पत्र (२) बायस्कोप (सवाक् चित्रपट) तथा (३) राजनैतिक व्याख्यान।

ऐसी दशा में परिवर्तित सामाजिक स्थिति में हमारे ऊपर सर्वसाधारण जनता को साक्षर बनाने का एक बड़ा उत्तरदायित्व है, जिससे वह समाचार-पत्र तथा मासिक पत्र-पत्रिकाएँ पढ़कर राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक ज्ञान स्वतः प्राप्त कर सके।

इस स्थल पर यह कहना अनुचित न होगा कि वह युग ही कुछ दूसरा था। उस समय गाँव छोटे-छोटे प्रजा-सत्तात्मक राज्य थे; जहाँ ज़मींदार और काश्तकार के अतिरिक्त हरएक गाँव में बढ़ई, लोहार, जुलाहा, कोरी, नाई सेवा के लिए तथा पाठशाला के गुरुजी पुरोहितजी शिक्षा और धार्मिक संस्कार के लिए आबाद किये जाते थे। गाँव की व्यवस्था पंचायत के हाथ में रहती थी। नाई, धोबी आदि सब पदाधिकारी समझे जाते थे।

काश्तकार उन्हें अनाज की उपज का कुछ हिस्सा दे देते थे, जिसे पूर्व की ओर 'फरवार' और दक्षिण की ओर 'वलुता' कहते हैं। उनके और किसानों के बच्चे अपने बाप-दादों के साथ काम करते-करते जातीय व्यवसाय में दक्ष हो जाते थे। वे किसी कारपेन्टरी, व कताई-बुनाई के स्कूल तथा कृषि-कालेज में पढ़ने न जाते थे। क्योंकि उस वक्त ऐसे स्कूलों की आवश्यकता ही न समझी जाती थी। इस दृष्टि से उन दिनों प्राचीन शिक्षा-प्रणाली, आधिभौतिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक शिक्षा के लिए काफ़ी अच्छी थी। उस समय आध्यात्मिक विचारों के विषय में साधू-महात्माओं के द्वारा निम्न-से-निम्न और उच्च-से-उच्च लोग भी यथेष्ट ज्ञान रखते थे। हाँ, अन्तर था तो केवल इतना ही कि आध्यात्मिक ज्ञान के अगाध सागर में विद्वत्स-मुदाय ज़्यादा गहराई तक और सामान्य जन-समाज कम गहराई तक पहुँचता था। ब्रह्म, जीव, प्रकृति और माया आदि जैसे गहन विषयों का पूर्णज्ञान सर्वसाधारण में था। यहाँ तक कि यहाँ के भिक्षुक भी इन विषयों की विशद व्याख्या करके लोगों को चकित कर देते थे। धार्मिक और आध्यात्मिक ज्ञान से भारत का अखिल वातावरण भरा हुआ था। हाँ, यह बात भी माननी पड़ेगी कि उसके साथ कुछ अन्ध-श्रद्धा पर आश्रित प्रथाएँ भी प्रचलित थीं। इसका फल यह हुआ कि समाज के आदमी धर्म-भीरु, श्रद्धालु और ईमानदार बन गये।

यहाँ पर यह कहना अनुचित न होगा कि इन विचारों का प्रभाव उनके आचरण के ऊपर बहुत अच्छा पड़ता था। शास्त्रोक्त ज्ञान के अभाव में, अज्ञान के साथ भी सब के हृदय में सब के लिए सद्भाव था। जैसे—छुआछूत का विचार करना: यह एक अन्धपरम्परा थी। लेकिन यह सब मानते हुए भी, सवर्णों के हृदय में, अछूतों के प्रति, प्रेम-भाव मौजूद था। आजकल जैसा

" मुख में राम—बगल में छूरी " वाला युग न था। वह युग तो हार्दिक प्रेम, श्रद्धा और सद्‌भाव का था।

दूसरा दृष्टान्त विधवा-विवाह का ले लीजिए। यह एक भ्रम-मूलक कल्पना थी कि कन्या एक बार एक आत्मा को दिये जाने पर दूसरी आत्मा को नहीं दी जा सकती। इस विचार का नतीजा हिन्दू नारियों के आचरण पर यह होता था कि या तो वे अपना जीवन मृतपति की पुनः प्राप्ति की तपस्या में व्यतीत कर देती थीं अथवा कभी-कभी, पति को चिता के साथ, हँसते-हँसते जलकर भस्म हो जाती थीं। इन सब बातों से प्रमाणित होता है कि प्राचीन शिक्षा-संस्कृति में श्रद्धा, भक्ति, विश्वास और पारस्परिक प्रेम कूट-कूटकर भरा हुआ था।

अर्वाचीन शिक्षा-प्रणाली में चाहे ज्ञान की ज्योति भले ही चतुर्दिक् फैल गई हो; मनुष्य चतुर-चालाक भले ही हो गया हो, अपने मतलब का हिसाब-किताब भले ही लगा लेता हो और संसार के सम्पूर्ण शास्त्रों को तर्कदृष्टि से भले ही समझ लेता हो; लेकिन सच बात तो यह है कि दुनियाँ से विश्वास, श्रद्धा और सद्भाव उठ-सा गया है और बचा-खुचा भी लुप्त होता जा रहा है। आज तो मनुष्य अपने आप को इतना विवेकी समझने लगा है कि अब उसे जगन्नियन्ता की आवश्यकता ही नहीं रही। वह चतुर है, तो अपने लाभ के लिए; ज्ञानी है तो दूसरों को मूर्ख बनाकर पैसा हड़पने के लिए; दुनियाँदार है तो भोले-भालों को चक्कर में डालने के लिए। यह सब वर्तमान शिक्षा-प्रणाली से मिले हुए ज्ञान का फल है।

हमने यहाँ पाठकों को वर्तमान और ब्रिटिश शासन से पूर्व प्रचलित शिक्षा-प्रणाली की जो तुलनात्मक झाँकी दिखलाई है, उसे देखकर सम्भव है, कुछ पाठकों को दुःख हो। परन्तु हमारी तो यह आन्तरिक कामना है ऐसी विषाक्त शिक्षा-प्रणाली का प्रचार

कम-से-कम ग्राम-निवासियों में न होना चाहिए। इसका कारण यह है कि इस प्रणाली के साँचे में ढले हुए जो अल्पाधिक व्यक्ति गाँवों में पहुँच जाते हैं, वे समाज में अशान्ति और उत्पात उत्पन्न करते रहने में ही अपनी शोभा और प्रतिष्ठा समझते हैं। इसी त्रुटि को दूर करने के लिए हमने अपनी शिक्षा-शैली का आधार सत्य, ईमानदारी और सद्भाव रक्खा है। सम्भव है, सुशिक्षित पाठक हमारे उपर्युक्त विचारों से सहमत न हों।

इस स्थल पर इसी प्रकार की समस्या जब एक अन्य देश में उत्पन्न हुई, तो उसने उसकी पूर्ति किस तरह की, इसका एक जीता-जागता दृष्टान्त मैं पाठकों समक्ष रखना चाहता हूँ।

योरप महाद्वीप में 'डेनमार्क' नाम का एक द्वीप है, जिसका क्षेत्रफल युक्तप्रान्त के तीन ज़िलों के समान है। वहाँ की भूमि अनुपजाऊ है; क्योंकि उसका चतुर्थांश रेत से परिपूर्ण है। समुद्र और उसका धरातल लगभग बराबर है। देश में खनिज द्रव्य की दशा भी शोचनीय है। उसके तीन चतुर्थांश में कृषि हो सकती है। आज से ७० वर्ष पूर्व वहाँ के किसानों की दशा अत्यधिक शोचनीय थी। शिक्षा का अभाव भी हमारे यहाँ के ही अनुरूप था। देश में दिन पर दिन अनियन्त्रण तथा बेकारी बढ़ रही थी। ऐसी हीनावस्था को देखकर 'फ़ादर गुंड्रविक' नाम के एक पादरी को तरस आया। उसने वहाँ की इस दुर्दशा को सुधारने का दृढ़ संकल्प कर लिया। इन महात्मा का हृदय सद्भाव और प्रेम से ओतप्रोत था। उन्होंने प्रेम और श्रद्धा पर ज़ोर देकर प्रौढ़ों के लिए एक छोटी-सी सहकारी शिक्षा-संस्था क़ायम की, जिसका नाम 'फ़ोकशूलन' या 'जनता की पाठशाला' रक्खा गया। प्रौढ़ों के पढ़ने के लिए वहाँ इन पाठशालाओं का अभ्यास-क्रम केवल छः मास का रक्खा गया था। उनमें लौकिक विषय जैसे—दूध-मक्खन का व्यापार, गोरक्षा और पशुओं की नस्ल

बढ़ाना आदि की शिक्षा भी दी जाती थी। पादरी महाशय ने अपने आचरण एवं सदुपदेशों से प्रौढ़ छात्रों पर सद्भाव, श्रद्धा सदाचार और ईश्वर-भक्ति का अनोखा प्रभाव डाला। वे सद्भाव पर विशेष ज़ोर देते थे। वहाँ 'फ़ोक शूलन' पाठशालाएँ स्थापित करने का परिणाम यह हुआ कि सभी प्रौढ़ स्त्री-पुरुष अल्पकाल ही में सुशिक्षित हो गये। वे अपना व्यवसाय, मेहनत और ईमानदारी से, करने लगे: अपना आचरण और विचार पवित्र रखने लगे। पादरी साहब के योग्य शिष्य उनका नाम अजर-अमर बनाये रखने के लिए आज तक यत्र-तत्र पाठशालाएँ खोलते जाते हैं। इन पाठशालाओं का वायुमंडल आज तक सद्भाव से गूँज रहा है। इन स्कूलों में उद्योग-धंधों का संचालन सहकारिता से करना सिखाया जाता है। ईमानदारी और ईश्वर-भक्ति वहाँ के सहकारी विभागों का आधार है। यही कारण है कि वहाँ की सहकारी समितियाँ बराबर उन्नति कर रही हैं।

अपने यहाँ की सहकारी समितियों के द्वारा हम जो अभी तक देश का नवनिर्माण नहीं कर सके, इसका विशेष कारण यह है कि हमारे सहकारी विभाग के सुपरवाइज़र तथा ग्रूप-सेक्रेटरी पट-वारियों की भाँति चतुर हो रहे हैं। उनकी शिक्षा का प्रभाव सह-कारी समिति के सदस्यों पर भी बहुत कुछ पड़ा है। जिस संस्था की नींव चतुराई और बेईमानी पर खड़ी हो, वह कभी उन्नति नहीं कर सकती। उन्नति तो सामान्य जनता में ईमानदारी, सद्भाव, अटल ईश्वर-भक्ति एवं धर्मभीरुता उत्पन्न करने और बढ़ाने से हो सकती है। यदि हम देश की उन्नति चाहते हैं, तो हमें डेनमार्क का आदर्श अपने सामने रखकर चलना पड़ेगा।

इस समय हमारे समाज में निम्नलिखित परिवर्तन हो रहे हैं—

शासन-पद्धति में परिवर्तन। पहले जहाँ छोटे-बड़े सभी झगड़े ग्राम्य पंचायतों से तय होते थे, आज उन्हीं के निपटारे के

लिए अदालतें क़ायम की गई हैं। गाँव की जो पाठशालाएँ पंचायत और चन्दे से चलती थीं, अब डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड तथा शिक्षा-विभाग के द्वारा चलाई जाती हैं जिनके अध्यापकों की आचारशीलता और कार्य-प्रणाली पर गाँववालों का कोई अधिकार नहीं है। गाँव और आस-पास के जो झगड़े प्रभावशाली लोगों की पंचायत के द्वारा तय होते थे और जहाँ वादी-प्रतिवादी अपनी दलीलें खुले दिल के उनके सामने उपस्थित करते थे, उस जगह पर, अब, अदालत में अपीलें-दर-अपीलें दायर की जाती हैं। वे अपना बयान स्वतः नहीं कर सकते, इसलिए बयान सिखाने-पढ़ाने व सबूत दिलाने के लिए वकील, मुख्तारों की ज़रूरत पड़ती है। सारांश यह कि प्राचीन काल में जनता के सम्बन्ध सीधे और स्पष्ट थे। वे सम्बन्ध साधारण किसान की समझ में भी आते थे। अब उनके क़ानून-क़ायदे वायसराय तथा भारत-मंत्री की राय से बनकर आते हैं। न्याय-अदालत, तहसील-वसूल शिक्षा-विभाग के विधान और कार्य उनके लिए अव्यक्त हैं। यह अव्यक्त सम्बन्ध साधारण किसान भली प्रकार नहीं समझ सकता। इसलिए उसे आर्थिक हानि उठानी पड़ती है।

ऐसी ही अव्यक्त बातें कारखानों की व्यवस्था में हैं। प्राचीन काल में एक व्यक्ति दूसरे के यहाँ मज़दूरी करता था। वह सीधे मालिक से पैसे पा जाता था। इसलिए ऐसा सम्बन्ध उसकी समझ में जल्दी आता था। मालिकों के बर्ताव में कुछ मनुष्यता भी रहती थी। लेकिन आजकल के कल-कारख़ानों में काम करनेवाले मज़दूरों के मालिक और कम्पनियाँ उनके लिए अव्यक्त हो गयी हैं। काम करने का ढर्रा अधिकतर क़ानून-क़ायदे पर चलने लगा है। जब तक किसान और मज़दूर काफ़ी पढ़-लिख नहीं जाते, तब तक उनकी क्षति बराबर होती ही रहेगी। आज तो उनके लेन-देन में भी बहुत परि-

वर्तन देख पड़ते हैं। उस समय वे गेहूँ देकर ज़रूरत पड़ने पर तेल और नमक लेते थे। वे एक तिहाई अधिक सूत देकर जुलाहों या कोरियों से कपड़े बुना लेते थे। गृहस्थी की आवश्यकताओं के अनुसार वे अपने खेतों में भिन्न-भिन्न जिन्सें बोकर अपनी गुज़र कर लेते थे। लेकिन अब ज़्यादा आमदनीवाली चीज़ें बेचकर दूसरी ज़रूरत की चीज़ें मोल लेना यह एक आर्थिक रूढ़ि-सी पड़ रही है; उनकी उपज का भाव भी गाँव या पास-पड़ोस की उपज पर निर्भर नहीं हैं। वह दूर देशों की उपज पर आश्रित है। अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक प्रबन्ध आरम्भ से ही दलालों के हाथ होने से अपढ़ किसान लूटे जाते हैं। इन सब बातों का सामाजिक और नैतिक विचारों पर अनिष्टकारक प्रभाव पड़ा है।

पंचायती शासन-काल में गाँव के मनचले नवयुवकों पर वयोवृद्धों का दबाव रहता था। इसलिए उनके कार्य्य मर्यादित रहते थे। जब से पंचायतें भंग हो गईं, तब से लोगों पर कुछ दूसरा ही रंग सवार है। नवयुवक तो आपे से बाहर हो रहे हैं। इस स्वेच्छाचारिता को बढ़ाने तथा अनीति पथ पर चलाने के लिए कुछ आधुनिक सुविधाएँ भी हैं। जैसे—रेल, मोटर, साइकिल आदि, जिनके द्वारा गाँव में चोरी, डाका, नारीहरण इत्यादि बुराइयाँ करके शीघ्रातिशीघ्र भागा जा सकता है।

मनमानेपन की वृद्धि से आजकल चाय, शराब, भाँग, चरस, चंडू और ताड़ी आदि मादक द्रव्यों का काफ़ी प्रयोग हो रहा है; क्योंकि वर्तमान शासन-पद्धति के अनुसार प्रत्येक आदमी अपनेमन का राजा है। उसे न तो अपने बूढ़ों का लिहाज़ है न देवी-देवताओं का डर, न परमेश्वर की सर्वव्यापकता पर विश्वास। उसका जीवन जब तक क़ायदे-क़ानून के अन्दर नहीं आता, तब तक वह "परम स्वतन्त्र न सिर पर कोऊ" विचारकर मनमानी

करता रहता है। मानव-समाज को नीति-पथ पर आरूढ़ रखने के अब दो ही साधन हैं—(१) सामाजिक दबाव (२) आन्तरिक विवेक-बुद्धि का विकास, जिससे वह नीति-अनीति में भेद कर सके—अनीति से होने वाली हानियाँ समझ सके।

इस समय समाज की नौका डावाँडोल है। पाश्चात्य तथा प्राच्य संस्कृति के मिश्रण से एक अजीब हलचल पैदा होगई है। यदि हम इस सामाजिक हलचल को बन्द करके, उसकी नींव विचारशीलता पर रखना चाहते हैं, तो हमें दो बातें करनी पड़ेंगी—(१) उन्हें उपयुक्त ज्ञान देना (२) उनमें सद्‌भाव और ईश्वरीय भय पैदा करना।

इस समय शिक्षा-विस्तार की बड़ी आवश्यकता है; क्योंकि सन् १९३५ ई० से नवीन शासन-पद्धति में प्रजा के चुने हुए मेम्बरों को बहुत अधिकार मिले हैं। विशेषकर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, म्युनिसिपैलिटी और असेम्बली आदि के चलाने की जिम्मेदारी प्रायः उन्हीं पर डाल दी गई है। ऐसी दशा में हम देहात के उन आदमियों को, जिन्हें वोट देने का अधिकार प्राप्त है और क्रमशः मिलता जा रहा है, ऐसा ज्ञान दें, जिसमें वे अपना मत विचार-पूर्वक अपने शुभचिन्तक उम्मेदवार को ही दे सकें। देहात के मत-दाता ही हमारे स्वामी हैं। इसलिए अपने मालिकों को साक्षर बनाना हमारा कर्तव्य है। यदि हम ऐसी परिवर्तनशील परिस्थिति में किसानों की उन्नति चाहते हैं, तो हमें उनमें प्रौढ़-शिक्षा का ज़ोरों के साथ प्रचार करना चाहिए; क्योंकि इससे तात्कालिक लाभ होने शुरू हो जायँगे और उनकी आर्थिक, सामाजिक एवं नैतिक दशा में भी अवश्य सुधार होगा।

दूसरा अध्याय

प्रौढ़-शिक्षा का इतिहास

जब तक गाँव के नवयुवकों तथा उनके नेताओं को साक्षर और बहुश्रुत बनाने के लिए प्रौढ़ पाठशालाएँ न क़ायम की जायँगी, तब तक ग्राम-सुधार का कार्य्य अधूरा ही रहेगा। यदि हम स्थायी रूप से ग्राम-सुधार करना चाहते हैं, तो हमें देहात में प्रौढ़शालाएँ चलाकर नवयुवकों में सुधार के प्रति आन्तरिक प्रेरणा और उमंग उत्पन्न करने का यत्न करना पड़ेगा। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए इससे बढ़कर कोई दूसरा साधन नहीं है। वर्तमान वैतनिक, निठल्लू सुधारकों के द्वारा ग्रामसुधार में कृतकार्य्य होने की कल्पना आकाश कुसुमवत् है। बाहरी दबाव या किराये के टट्टुओं से यह काम नहीं चल सकता।

आजकल देहात में गन्दगी, मनहूसी और नैतिक बुराइयों का बोल-बाला है। आज से ७५ वर्ष पूर्व गाँवों की दशा इतनी गिरी हुई नहीं थी। इस अधोगति के अनेक कारण हैं। प्राचीन काल में प्रौढ़ शालाओं का कार्य्य चलाने के लिए अन्य प्रकार की संस्थाएँ प्रचलित थीं। इन संस्थाओं का काम धर्मानुयायियों को शिक्षा देने के लिए पुरोहित और मुल्ला करते थे; क्योंकि ग्रामवासियों का जीवन धार्मिक सूत्र में आबद्ध था और उनके आचरण, रीति-रिवाज धर्म के आधार पर टिके हुए थे। यही कारण है कि उस समय जनता पर मुल्लों और पुरोहितों के उपदेशों का अचूक असर पड़ता था। उन दिनों पुरोहित का लड़का गाँव से दस-पन्द्रह मील के अन्तर पर या काशी, प्रयाग

जाकर संस्कृत-पाठशालाओं में कर्मकाण्ड का अभ्यास करता था। इतना ही नहीं : वह वहाँ पर आयुर्वैदिक ज्ञान में भी दक्ष हो जाता था। पुरोहित का पद प्राप्त करने पर वह ग्रामीणों तथा उनके बाल-बच्चों को जड़ी-बूटियों से बनी हुई औषधियाँ मुफ़्त बाँटता था। एकादशी-पूर्णमासी और पर्व-विशेष के सुअवसर पर वह प्रवचन, कीर्तन, पुराण-पठन और रामायण की कथा कह-कर सामाजिक नीति का उपदेश करता था, जिससे जनता की आध्यात्मिक उन्नति के साथ-ही-साथ सामाजिक उन्नति भी होती थी। इन्हें सभी जाति के लोग आदर की दृष्टि से देखते थे; क्योंकि ये सब के पुरोहित होते थे और उनके झगड़ों से कोई सम्बन्ध न रखते थे।

देहात में ऐसे बहुत से अवसर देखने को मिले हैं, जहाँ क्षत्रियों के दो दल लाठी लेकर फ़ौजदारी के निमित्त युद्धक्षेत्र में मर मिटने के लिए आ गये हैं, वहाँ उन्हीं पुरोहित महाशय ने नंगे सिर बीच में खड़े होकर, गाँव को रक्तपात से बचा लिया है। क्या आजकल के ग्राम-सुधारकों का कार्य्य इनसे कहीं ज़्यादा महत्त्व का है?

त्यौहारों का धर्म्म के साथ अटूट सम्बन्ध है। जैसे—दीपावली, होली, सूर्यग्रहण और चन्द्र-ग्रहण के मौक़े पर घर की लिपाई-पुताई, कार्तिक अमावस्या को पशु-स्नान, गोवर्धन-पूजन, देवो-त्थान एकादशी को घर का दरिद्र हटाना। इन सब बातों की स्मृति पुरोहित देवता घर-घर जाकर स्वयम् दिलाते थे। इसके उपलक्ष में गाँव के लोग उन्हें श्रद्धापूर्वक कुछ दे देते थे, जिससे वे प्रसन्न रहते थे। यदि वे पुरोहित सुधारक का कार्य्य सच्चे हृदय से न करते, तो समाज में उनकी इतनी उपयुक्तता न होती। क्योंकि दुनियाँ बहुत दिनों तक स्वार्थलोलुप, धूर्त और बेकार आदमियों के शिकञ्जे में नहीं रह सकती।

अंग्रेज़ी शासन-काल में जैसे-जैसे ये प्राचीन प्रथाएँ लुप्त होती गईं, वैसे-वैसे नई-नई समस्याएँ, किसानों के सामने आने लगीं। प्राचीन काल में ग्रामीण लोग, प्रजासत्तात्मक ढँग की ग्राम्य पंचायतों के सुखमय वातावरण से परिचित रहने के कारण, राजकीय व्यवस्था से परिचित रहा करते थे। परन्तु अब ब्रिटिश शासनकाल में, पंचायत प्रथा के नष्ट हो जाने के कारण, वर्तमान शासन-पद्धति की रूप-रेखा ही जब उनकी समझ में नहीं आती, तो उन बेचारों को रक्षित तथा हस्तान्तरित विषयों एवं उनके पदाधिकारियों के कार्य्यों का ज्ञान कैसे हो सकता है? अब तो उद्योग-धन्धे एवं व्यापार के सम्बन्ध भी इतने जटिल हो गये हैं, जिनका समझना उनके मानसिक क्षितिज से परे है।

आजकल ग़ल्ले की तेज़ी-मद्दी गाँव की उपज पर निर्भर न रहकर समीप के सूबों या अन्य देशों की पैदावार पर निर्भर रहती है। प्राचीन काल में तुषार व अनावृष्टि से जब कभी गाँव में दुर्भिक्ष पड़ता था, तब गाँववाले दुर्गा देवी या ईश्वर का प्रकोप समझकर अपना समाधान कर लेते थे। लेकिन इस ज़माने में व्यापारिक और राजनीतिक ज्ञान प्राप्त करना सुयोग्य नागरिक बनने के लिए आवश्यक हो गया है। ग्रामवासियों को इन बातों का ज्ञान देने के लिए हमें उनका मानसिक क्षेत्र बढ़ाना पड़ेगा। इस उद्देश्य की पूर्ति गाँवों में प्रौढ़-पाठशालाओं के संचालन से ही हो सकती है।

एग्रिकल्चर कमीशन के अध्यक्ष की हैसियत से हमारे वर्त्तमान माननीय वायसराय लार्ड लिनलिथगो साहब ने प्रौढ़-पाठशालाओं के सम्बन्ध में एक सारगर्भित वक्तव्य प्रकाशित किया है। उसमें आपने प्रौढ़-पाठशालाओं की प्रशंसा की है और जनता को उनसे होनेवाले लाभ भी बतलाये

हैं। पाठकों के लाभार्थ नीचे उनका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है—

(१) प्रौढ़-पाठशालाओं से कृषकों का दृष्टिकोण व्यापक होगा और उनके ज्ञान का क्षितिज विस्तृत होगा।

(२) किसान कृषि की उन्नति के लिए किये गये आविष्कारों से सहानुभूति रक्खेंगे और उनके प्रयोग से खेती की पैदावार बढ़ा सकेंगे।

(३) देहाती किसान खेती की उपज को अच्छे भाव से बेचने में समर्थ होंगे।

(४) प्रौढ़-शिक्षा से लाभ उठाने के बाद, बच्चों की शिक्षा के सम्बन्ध में उनकी उदासीनता दूर होगी।

(५) शिक्षा-प्रचार से देहातियों को कैसा लाभ होता है, इसका परिचय तथा आभास मिल जाने पर वे शिक्षा-कर देने के लिए सहर्ष तैयार हो जायँगे। इस प्रकार बच्चों की प्राथमिक शिक्षा के विस्तार में आनेवाली आर्थिक आपत्ति बहुत कुछ दूर हो जायगी।

(६) प्रौढ़ों को साक्षर बनाने से देहात में पुस्तकालयों की वृद्धि होगी। फलतः इस ढंग से प्रायमरी स्कूलों के पढ़े-लिखे लड़कों में उनके पुनः निरक्षर हो जाने की स्थिति न पैदा होगी।

(७) तुरन्त सार्वांगिक उन्नति करने के लिए प्रौढ़-शिक्षा का प्रचार, दो-चार पीढ़ियों तक, धूम-धाम से करना पड़ेगा।

प्रौढ़-शिक्षा से होनेवाले उपर्युक्त लाभों से किसी का मत-भेद नहीं हो सकता। परन्तु अभी तक किसी भी सूबे में सरकार या शिक्षा-विभाग द्वारा प्रौढ़-शिक्षा का आन्दोलन किया नहीं गया। आज भी शिक्षा-विभाग इस कार्य्य को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। उसके ख़याल से प्रौढ़-शिक्षा अव्यव-

हार्य्य है और इसमें धन-व्यय करना बेकार है। उसकी ऐसी हिचकिचाहट के बारे में एक सज्जन ने विनोदपूर्वक—पर मर्म-स्पर्शी शब्दों—में कहा था। मालूम होता है कि शिक्षा-विभाग के अधिकारी, रात्रि में प्रौढ़-पाठशालाओं का निरीक्षण करने से घबड़ाते हैं?

मेरे विचार से प्रौढ़-शिक्षा को अव्यावहारिक क़रार देने में उनका कोई दोष नहीं है। दोष है, उनके आज तक के प्राप्त अनुभव का, जिसके बल पर उन्होंने ऐसा कहा है। इसलिए आवश्यकता है कि हम प्रौढ़-शिक्षा के पूर्व इतिहास की ओर दृष्टिपात करें।

ऐतिहासिक दृष्टि से सर्व प्रथम मद्रास सरकार ने प्रान्त के 'पंचम' नाम के हरिजनों को शिक्षित करने के लिए प्रौढ़-शालाएँ जारी कीं। उनसे दिन में अविश्रान्त श्रम से थके हुए काश्तकारों और मज़दूरों को रात्रि में दो घंटा पढ़ाने की कल्पना अतीव मनोहर प्रतीत हुई। इस कारण इन रात्रि पाठशालाओं का प्रचार औद्योगिक शहरों में बड़े-बड़े कल-कारखानों के मज़दूरों को साक्षर बनाने के लिए किया गया।

इसके कुछ दिन बाद ही बङ्गाल तथा युक्तप्रान्तीय सरकार ने, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की सहायता से, देहातों में प्रौढ़-पाठशालाओं को जन्म दिया। लेकिन कहीं भी उसे सफलता नहीं मिली। प्रौढ़-शालाओं की असफलता के जो कारण शिक्षा-विभाग के पदाधिकारी बतलाते हैं, उनके अभिप्राय का सारांश नीचे दिया जाता है।

सन् १८९७-९८ से सन् १९०१-०२ तक अनुभव करके बम्बई प्रान्तीय शिक्षा-विभाग के डायरेक्टर साहब अपनी पंच-वर्षीय पर्यावलोकन रिपोर्ट में लिखते हैं कि "प्रौढ़-शालाओं का हाल हर प्रकार से अधोगति पर है। पढ़नेवालों की संख्या

और उपस्थिति अत्यन्त शोचनीय है और उन पर किया जाने-वाला व्यय सर्वथा व्यर्थ है। अतएव ऐसी पाठशालाओं के प्रसार की कोई आशा न आज है, न कभी होगी। भारतवर्ष में केवल शिक्षा के लिए ही अध्ययन की क़द्र नहीं की जाती, न इसमें इतने आधिभौतिक लाभ हैं जिनसे दिन भर के थके-माँदे प्रौढ़ छात्र आकृष्ट हों। इसके सिवा यह भी विचार करने की बात है कि उक्त पाठशालाएँ चलाने के लिए प्राथमिक पाठशालाओं के जो अध्यापक नियत किये जाते हैं वे स्कूल में दिन भर चिल्लाते-चिल्लाते तंग आ जाते हैं। कहीं-कहीं इन अध्यापकों को पोस्ट-आफ़िस का काम भी करना पड़ता है। ऐसी दशा में उन विश्रान्त अध्यापकों से ऐसे महत्वपूर्ण कार्य्य में पूर्ण सहयोग मिलने की क्या आशा की जा सकती है?

बङ्गाल प्रान्तीय स्कूलों के एडीशनल इन्सपेक्टर रायसाहब भगवतीसहाय अपने सन् १९१२ की पर्यवलोकन-रिपोर्ट में लिखते हैं—जब तक मज़दूर, जिनके लिए ख़ास तौर से यह पाठशालाएँ खोली गई हैं, बिना शिक्षा पाये काफ़ी वेतन पा सकते हैं, तब तक उन्हें ऐसी पाठशालाओं की आवश्यकता का बोध ही न होगा। यदि रात्रि-पाठशालाएँ ज्ञान-वृद्धि के विचार से, चलाई भी जायँ, तो यह सम्भव नहीं है। क्योंकि शिक्षा ही हमारा ध्येय है, ऐसी समझ हमारे देश में अभी तक नहीं आयी।

उक्त कथनों से पता चलता है कि प्रायः बहुत से शिक्षा-विशारद प्रौढ़ पाठशालाओं के सम्बन्ध में एकमत हैं। उनके उक्त कथनों से हमने निम्नांकित तीन निष्कर्ष, विशेष रूप से, निकाले हैं—

(१) इस देश के आदमी प्रेमपूर्वक शिक्षा नहीं ग्रहण करते।

(२) यदि प्रौढ़-शिक्षा से छात्रों को आधिभौतिक लाभ भी होता हो, तो भी उनके हृदय में उसका कोई मान नहीं।

(३) शिक्षा-विशारदों की यह भविष्यद्वाणी है कि प्रौढ़-पाठशालाएँ कभी धूम-धाम से न चलेंगी।

अब यहाँ पर इन मतों के विषय में हमें विचार करना है, जिससे वस्तु स्थिति की यथार्थता का स्पष्टीकरण हो जाय।

इस देश में विद्याभिलाषा नहीं है। यह कितना बेढंगा कथन है! मालूम होता है, ऐसे मतदाता विद्याभिलाषियों की खोज के लिए हरिजन तथा कारख़ानों में काम करनेवाले मज़दूरों और किसानों के ही पास गये हैं।

यदि यह बात भी मान ली जाय कि जिस ढंग से प्रौढ़ों को लिखना-पढ़ना सिखाया जाता है, उससे शायद ही उन्हें कुछ लौकिक लाभ हो। लेकिन प्रौढ़ों की दलील तो यह है कि उस अल्प लाभ की प्राप्ति में हमें बहुत स्वार्थ-त्याग करना पड़ता है। सच बात तो यह है कि उनकी प्रौढ़-शिक्षा-प्रणाली ही अग्राह्य है। दिन भर के थके मुर्दादिल अध्यापक, जिनको शिक्षा-दान का क़तई शौक नहीं, ४ वर्ष का कार्य-काल समाप्त कर देते हैं और विचारे देहाती प्रौढ़ों को उनके जीवन की उपयोगिता की कोई भी शिक्षा नहीं मिल पाती। ऐसी परिस्थिति में यदि वह शिक्षा-प्रणाली सफल न हो, तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है?

आज से ३५ वर्ष पूर्व बम्बई प्रान्तीय शिक्षा-विभाग के डायरेक्टर साहब ने यह भविष्यद्वाणी की थी कि भविष्य में प्रौढ़-शिक्षा के प्रचार की कोई आशा नहीं है। हमारा अनुमान है कि उस ज़माने में जब उन्होंने उक्त अनुभव प्रकाशित किया था, उस समय समाज की वैसी ही स्थिति रही होगी। लेकिन काल की गति बड़ी विचित्र है। अब वह समय आ गया है कि आनेवाले दस वर्षों में प्रौढ़-शालाएँ ठाठ के साथ चलेंगी। श्रीमान् मांडेजी को समय की परिवर्तनशीलता का

आश्चर्य्य-जनक अनुभव है। लगभग २० वर्ष पहिले उन्हें पूना के फ़र्ग्युसन् कालेज में अछूतों के मुहल्लों में छुआछूत का भेद-भाव मिटाने के लिए जाना पड़ा था। वहाँ उन्होंने देखा कि बेचारे दलित लोग बहुत आग्रह करने पर, उनके टाट पर बैठते थे। उनमें बहुत से तो मर्यादोल्लंघन के भय से दूर ही रहते थे। वे समझते थे कि छूने में हमें ही दोष लगेगा। जब वे १९२५ ई० में नागपुर-म्युनिसिपैलिटी के भंगी कर्मचारियों के पास, उनकी आर्थिक स्थिति की जाँच करने के लिए जाते थे तब वे भी यही कहते थे। आज उन्हीं हरिजनों के मानसिक विचारों के तारतम्य को देखकर चकित हो जाना पड़ता है। एक युग वह था, जब अछूत कहते थे कि सवर्णों के छूने में हमें उल्टा पाप लगेगा। और आज ऐसा युग आ गया कि वे सरे-मैदान गला फाड़-फाड़ कर कहते हैं कि अछूतपन उच्च जातियों ने ज़बरदस्ती बहुत दिनों से हमारे सिर पर लाद रक्खा है! इस कलंक को बनाए रखने की ज़िम्मेदारी सवर्ण जातियों पर है। हमारे देखते-देखते १० या २० साल के अन्दर ही अन्दर वे बलपूर्वक डंके की चोट पर अपने अधिकार माँगने के लिए तुल गये। केवल इतना ही नहीं, उन्होंने सवर्ण जातियों को चुनौती भी दी कि बिचकने के बजाय हमसे प्रेम-पूर्वक मिलो और हमें भी मन्दिर-प्रवेश की स्वतन्त्रता दो। नहीं तो हम धर्मान्तर कर देंगे। यही हालत प्रौढ़-शिक्षा के विषय में भी होनेवाली है। दस वर्ष के अन्दर-ही-अन्दर प्रौढ़ किसान जगह-जगह इस बात का ढिंढोरा पीटेंगे कि सरकार, शिक्षा-विभाग के अधिकारी, पूँजीपति और शिक्षित वर्ग ने ही, आज तक जान-बूझकर हमें निरक्षर बना रक्खा है! कालान्तर के इस परिणाम का मूल कारण यह है कि प्रौढ़ों के मताधिकार दिनों दिन बढ़ रहे हैं और बढ़ते ही जायँगे।

इंगलैंड का शिक्षा-इतिहास हमें इस बात का सबूत देता है। सन् १८३३ में सुधार विधान पास होने के एक साल बाद ही शिक्षा के लिए कोष से एक बड़ी रक़म दी गई। सन् १८७० ई० के दूसरे सुधार-विधान के पास होते ही तमाम इंगलैंड में अनिवार्य्य शिक्षा का नियम लागू कर दिया गया। इसके साथ ही सन् १९१८ का फ़िशर साहब का शिक्षा विधान भी तीसरे सुधार-विधान निश्चित होने के कुछ मास पहले प्रचलित हो गया। इससे पता चलता है कि शिक्षा-प्रचार और राजकीय शासन का मताधिकार, इन दोनों का साथ बराबर चलता है। इसकी कुंजी हमें १८७० के मताधिकार आन्दोलन में मिलती है। जिस समय कहा जाता था कि "हमको अपने मालिक मताधिकारियों को शिक्षा देना है, जिनके मत से हम सर्वेसर्वा बने हुए हैं।"

प्रौढ़-शिक्षा का प्रसार कितनी शीघ्रता से होगा, इसके चिह्न देख पड़ने लगे हैं; क्योंकि प्रचार में कहीं-कहीं हार्दिक सहकारिता भी मिल रही है। पंजाब और युक्तप्रान्त के सहयोग विभाग द्वारा प्रौढ़-शिक्षा का नवीन आन्दोलन चलाया जा रहा है। सूबा बम्बई में सर विट्ठलदास ठाकरसे के बृहत् दान से सेवा समितियों द्वारा रात्रि-पाठशालाएँ स्थापित हो रही हैं।

मद्रास की वाय० एम्० सी० ए० संस्था इसका अच्छा प्रचार कर रही है। भविष्य के गर्भ में क्या है, यह बताना तो कठिन है। पर प्रौढ़-पाठशालाएँ असफल क्यों हुईं, इस स्थान पर इसका विचार कर लेना अप्रासंगिक न होगा।

प्रौढ़-शिक्षा का उद्देश्य

जब तक प्रौढ़-पाठशालाएँ शिक्षा-विभाग के अधिकारियों की निगरानी में रहीं, तब तक उनके पढ़ाने का ढंग, उनका उद्देश्य और पाठ्यक्रम प्राथमिक शिक्षा की पुनरावृत्ति मात्र था।

उन्हें वहीं की बातें पढ़ाई जाती थीं, जो प्राथमिक कक्षाओं के बच्चों में प्रचलित थीं। इनके पठन-पाठन का ढंग भी वैसा ही था। अन्तर केवल इतना था कि बच्चे दिन में और प्रौढ़ किसान लोग रात्रि में पढ़ाये जाते थे।

हमारा अभिप्राय यह है शिक्षा-विभाग के कार्याधिकारियों की प्रौढ़ शिक्षण की योजना सर्वथा त्रुटि-पूर्ण थी। किन्तु कार्य के व्यावहारिक स्वरूप को देखते हुए हम इतना ज़रूर कहेंगे कि जब से प्रौढ़-शिक्षा के निरीक्षण का भार सहकारी विभाग के अधिकारियों ने अपने ऊपर लिया, तब से प्रौढ़-शिक्षा के उद्देश्यों के सफल होने का भविष्य स्पष्ट झलकने लगा है। यहाँ उसका कुछ संक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

प्रौढ़-शिक्षा की व्याख्या

प्रौढ़-शिक्षा का प्रचार इंगलैंड, अमेरिका, डेनमार्क, स्विटज़रलैंड आदि देशों में हो रहा है। डेनमार्क तथा जर्मनी की 'फोक शूलन' नाम की प्रौढ़-पाठशालाएँ संसार-प्रसिद्ध हैं। खास इंगलैंड में "वर्कमेन्स-नेशनल-असोसियेशन" तथा विश्व-विद्यालयों की ओर से जो ज्ञान प्रौढ़ों को दिया जाता है, उसे वहाँ भी प्रौढ़-शिक्षा ही कहते हैं। हालांकि साक्षरता का प्रश्न उस देश में नहीं है; क्योंकि बहुत अरसे से अनिवार्य शिक्षा जारी होने के कारण सभी लोग साक्षर हैं। वहाँ प्रौढ़-शिक्षा का अर्थ देश के लोगों को सामाजिक, धार्मिक, नैतिक और सांस्कृतिक उन्नति के विषय में भाषण द्वारा ज्ञान देना और साम्यवाद, अर्थ-शास्त्र, पूँजीवाद तथा राष्ट्रीय समाजवाद के नये-नये सिद्धान्तों का प्रचार करना है। तात्पर्य्य यह कि श्रमजीवियों या जिनको कार्य्य की अधिकता के कारण सामयिक विचारों की हलचल का ज्ञान प्राप्त करने के लिए समय नहीं मिलता, उन्हें, उक्त विषयों का ज्ञान देकर मानसिक क्षेत्र का विकास किया जाता है।

अब यहाँ सूक्ष्म दृष्टि से हमें यह विचार करना है कि इस प्रकार की प्रौढ़-शिक्षा हमारे समाज में पहले कभी थी या नहीं। यदि थी, तो किस ढंग से। आज से ७० वर्ष पूर्व का सामाजिक इतिहास उठाइये, तो पता चलेगा कि कथावाचक, प्रवचन-कर्ता तथा कीर्तनकार देश के कोने-कोने में घूम-घूमकर ज्ञान वृद्धि का कार्य्य करते थे। इस विषय में पुनः कुछ लिखना पिष्ट-पेषण होगा : क्योंकि पिछले अध्याय में इस विषय पर अपने विचार हम प्रकट कर ही चुके हैं।

भारतवर्ष का बहुजन-समाज—विशेषतः पिछड़ी जातियों के लोग—आधुनिक शासन-पद्धति एवं संसार के नये-नये परिवर्तनों के साधारण ज्ञान से भी अनभिज्ञ हैं। इसके अतिरिक्त उनके हृदय में चिन्ता, कार्य्यों में उदासीनता और चेहरों पर मुर्दापन है। हमें अपने किसानों की मनहूसी दूर करने और उनमें ज्ञान का प्रचार करने के लिए ही प्रौढ़-शिक्षा का प्रचार करना अपना मुख्य ध्येय बनाना है। किसान निरक्षर हैं। यदि वे साक्षर होते, तो उपर्युक्त त्रुटियों के निराकरण का उपाय सोचते।

हमारे कहने का अभिप्राय यह नहीं कि साक्षर ज्ञानी और निरक्षर मूर्ख होते हैं। ऐसे भी आदमी देखने में आये हैं, जो ज्ञानी हैं, पर निरक्षर हैं। परन्तु साधारणतः जो निरक्षर हैं वे ज्ञान के प्रकाश का अनुभव नहीं कर पाते। हमें प्रौढ़-पाठशालाओं द्वारा कृषकों में साक्षरता तथा ज्ञान का प्रचार करने के लिए तत्पर हो जाना चाहिए।

तीसरा अध्याय

वाचन-शिक्षण का ढँग

देहात के नब्बे प्रतिशत से अधिक कृषक निरक्षर हैं। इस बहुजन-समाज को साक्षर बनाने के लिए शिक्षण-पद्धति मनोरञ्जक तथा सुलभ होनी चाहिए। ऐसी एक सुलभ शिक्षा प्रणाली की खोज में श्री माँडे जी ने निम्नलिखित प्रयोग किये हैं—

जब वे न्यूयार्क शहर के कोलम्बिया विश्व-विद्यालय में पढ़ते थे, तब विशेष रूप से मनोविज्ञान का अध्ययन करते थे। उस समय उन्होंने अमेरिकन सहपाठियों को, जो भारतीय लिपि तथा भाषाओं से अनभिज्ञ थे, वाक्य-पद्धति के द्वारा नागरी अक्षरों का ज्ञान देने का प्रयोग किया था। इस पद्धति के प्रयोग से उन्हें पूरी सफलता मिली; जिससे उनका उत्साह द्विगुण हो गया। अन्त में उन्होंने यह तथ्य निकाला कि डाक्टर ह्यूए ने नेत्रों की गति के अनुसार पढ़ाने की जिस शैली का अनुसंधान किया है; उस के सहारे देहात के किसान शीघ्राति-शीघ्र पढ़ सकेंगे। धीरे-धीरे इस तथ्य पर उनका विश्वास दृढ़ हुआ।

श्री मांडेजी ने इस सरल शिक्षा परिपाटी का दूसरा प्रयोग सेन्ट्रल जेल नागपूर में सन् १९२५ ई० में किया।

सेण्ट्रल जेल में प्रयोग करने का उनका उद्देश्य यह था कि इस प्रकार के वातावरण में ही नियंत्रित प्रयोग (controlled experiment) करना श्रेयस्कर होगा। क्योंकि उनको दो factors या अंगों का नियंत्रण करना था। एक तो छात्रों की निरक्षता, दूसरा शिक्षण की निश्चित अवधि। जेल के सुपरिंटेन्डेन्ट साहब ने उनके इच्छानुसार उनको वहीं ऐसे २३ कैदी चुनकर दे दिये,

जिन्होंने कभी काले अक्षर की आकृति तक न देखी थी और कारावास के नियमानुसार केवल एक घंटा शिक्षा देने की आज्ञा दी। श्रीमांडेजी ने छः मास तक इन्हें वाक्य-पद्धति के द्वारा शिक्षा दी, जिसका परिणाम यह हुआ कि सब क़ैदी इस अल्प समय में ही काफ़ी लिख-पढ़ गये। इससे उनको भरोसा हो गया कि हमारे किसान भाई इस ढंग से बहुत शीघ्र शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। इस पद्धति से पढ़ाने के लिए चार्ट्स (नक़शे) मराठी भाषा में लिखे गए थे। बाद में उन्होंने हिन्दी में भी उसी ढँग पर तैयार कर लिये।

सन् १९२९ में संयुक्तप्रान्तीय सहकारी-विभाग की ओर से श्रीमांडेजी प्रौढ़-पाठशालाओं के इन्सपेक्टर नियुक्त हुए।

सन् १९२९ से सन् १९३१ तक उन्होंने उसी सिद्धान्त के अनुसार नागरी लिपि में चार्ट बना-बनाकर उनका प्रचार किया। उस समय के निर्मित चार्ट्स का एक नमूना हम परिशिष्ट अ में दे रहे हैं। उससे विदित हो जायगा कि प्रत्येक चार्ट में मात्रा-रहित तीन अक्षरों का एक शब्द, बहुत से वाक्यों में मिश्रित, भिन्न-भिन्न स्थलों पर रक्खा गया है और विद्यार्थियों के सामने शब्द चुनने की 'समस्या' इस ढंग से रक्खी गई है, जिससे उनका ध्यान शब्द के आकार की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हो जाय। शब्दों के अक्षर पृथक् करके चार्ट में शब्द उसी ढंग से रक्खे गये हैं, जिससे शब्द-चार्ट द्वारा अक्षरों की ओर छात्रों का विशेष ध्यान आकृष्ट हो। यह चार्ट डाक्टर ह्यूए के आविष्कारों के सिद्धान्त के ऊपर अक्षरशः आधारित है। लेकिन इस शिक्षा-प्रणाली में उन्हें अनुभव करके एक और परिवर्तन करना पड़ा।

एक समय शान्तिपुर ज़िला फ़ैज़ाबाद में श्रीमांडेजी का कैम्प था। सौभाग्य से वहाँ पंडित शीतलाप्रसादजी (अध्यापक

संस्कृत-पाठशाला) से उनको भेंट हुई। उन्होंने श्रीमांडिजी के सामने एक ऐसा आदमी लाकर खड़ा कर दिया, जो रामायण धड़ाके से पढ़ लेता था, पर लिखना क़तई नहीं जानता था और न कभी उसने स्कूल की सूरत ही देखी थी। यह अनुभव उनके लिए बहुत ही आश्चर्य्य-जनक था। पंडितजी से पूछने पर पता चला कि देहात में ऐसे कुछ स्त्री-पुरुष पाये जाते हैं; जो कभी स्कूल नहीं गये और न कुछ लिख ही सकते हैं, पर रामायण धारा-प्रवाह पढ़ सकते हैं। यह अनोखा कौतुक देखकर श्रीमांडिजी इस आश्चर्य में दो दिन तक पड़े रहे कि यह लोग पढ़ना किस प्रकार सीख लेते हैं। विचार करने पर वे इस सिद्धान्त पर आ पहुँचे कि जिस शिक्षा-परिपाटी का आधुनिक मनोविज्ञान-वेत्ता बड़े धूमधाम से प्रचार करते हैं, उसी पद्धति से ये बेचारे देहाती बिना किसी प्रकार के पथ-प्रदर्शन के पढ़ना सीख जाते हैं। अक्षरों का ज्ञान वे जिस सिद्धान्त के अनुसार प्राप्त करते हैं, वह आधुनिक मनोविज्ञान के सिद्धान्त से भिन्न नहीं है। अन्तर केवल इतना ही है कि यह सिद्धान्त उनके मस्तिष्क में स्पष्ट रूप से अंकित नहीं थे और इन सिद्धान्तों की परिभाषा भी अपूर्ण थी।

इस अनुभव से उन्होंने यही निष्कर्ष निकाला कि रामायण पढ़नेवाले स्त्री-पुरुष बचपन में रामायण की चौपाइयाँ बड़े चाव से सुनते रहे होंगे; उनको यह चौपाइयाँ मनोविनोद के साथ कंठस्थ हो गई होंगी। यह लोग पढ़ने की जिज्ञासा से चौपाइयों के नीचे उंगली घुमाकर कंठस्थ चौपाइयों के शब्दों को खोजते रहे होंगे? खोजना और उसका बराबर पता लगाना—इस पद्धति से उन शब्दों से उनका परिचय हो गया और अंत में जिसे अक्षर परिचय कहते हैं, उसका ज्ञान पैदा हुआ होगा।

यहाँ पाठकों के मन में यह प्रश्न अवश्य पैदा होगा कि उन

प्रौढ़-स्त्री-पुरुषों को विना पढ़े अक्षर-ज्ञान किस प्रकार हुआ और इसके अन्तस्तल में मनोविज्ञान का कौन-सा तत्व छिपा है। हमारे विचार से ये लोग उन्हीं मनोवैज्ञानिक ढंग से साक्षर हुए, जिस ढंग से आजकल के प्रौढ़ स्त्री-पुरुष विना पढ़ाये संख्या का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। यह एक मानी हुई बात है कि छोटे-छोटे बच्चों को संख्या का ज्ञान नहीं रहता। यदि हम डेढ़ या दो वर्ष के बच्चे को गोलियों के द्वारा दो की संख्या का ज्ञान देना चाहें, तो दो वर्ष का बच्चा एक गोली और एक गोली अन्त तक कहता रहेगा; पर दो की संख्या के सम्बन्ध में उसके मस्तिष्क में स्वतन्त्र कल्पना न पैदा होगी। वही बालक कुछ सयाना होने पर २, ३, ४, ५ और कभी-कभी दस तक की संख्या की कल्पना सहज ही में कर लेता है। इस स्वतन्त्र कल्पना का जन्म उसके मस्तिष्क में किस प्रकार हुआ, इस सम्बन्ध में हमारी धारणा नीचे लिखे अनुसार है।

बच्चे की माँ ने कभी उसको दो आम, दो खिलौने और दो अमरूद दिये होंगे और इसी प्रकार दो की संख्या का प्रयोग अन्य वस्तुओं के साथ करके बच्चे से वे चीज़ें लाने को कहा होगा। पहले पहल बच्चा समझा होगा कि संख्या और वस्तु दोनों एक ही चीज़ें हैं; लेकिन भिन्न-भिन्न वस्तुओं के साथ बार बार उच्चारण होने और तादाद में दो ही वस्तुएँ सामने आने से उसके मन में दो की संख्या की स्वतन्त्र कल्पना का जन्म हो गया।

इसी प्रकार रघु, राघव, राजा, सीताराम आदि में र की आवाज बार-बार सुनते-सुनते उन्होंने "र" की आकृति पहचान ली और समझ लिया कि "र" किसी शब्द के साथ समन्वित नहीं है; किन्तु वह एक स्वतन्त्र ध्वनि का चिह्न है; पर कारणवश उन शब्दों के साथ आया है। यह स्वतन्त्र कल्पना उनके दिमाग़

में आ गई होगी। तात्पर्य्य यह कि यह अक्षर-ज्ञान जो उन सयाने स्त्री-पुरुषों को हुआ, वह उपर्युक्त उदाहरणों के आधार से नियम निकालनेवाली पद्धति के सहारे ही हुआ।

जिस प्रणाली से इन्हें शिक्षा मिली, उस प्रणाली की निम्न-लिखित विशेषताएँ सिद्ध होती हैं—

(१) पढ़ने का प्रारम्भिक विषय सार्थक और रसीला था।

(२) पढ़ना वाक्य और शब्दों से प्रारम्भ हुआ न कि अक्षरों से ?

(३) यह बात स्पष्ट है कि इन स्त्री-पुरुषों ने लिखना नहीं सीखा। यदि वे प्रयत्न करते, तो लिखना भी आसानी से सीख जाते। अक्षरों के आकार से परिचय होने और तदनन्तर उनकी तस्वीर मस्तिष्क में खिंच जाने पर लिखना कठिन नहीं है। पहले पढ़ना, फिर उसके बाद लिखना सिखलाना वर्तमान शिक्षा-शास्त्र का मुख्य सिद्धान्त है।

सन् १९३१ ई० के बाद श्रीसिंहजी ने भजनों द्वारा प्रौढ़ों को साक्षर बनाने का ढंग प्रचलित किया, जो शान्तिपुर-पद्धति के नाम से प्रसिद्ध है। इस पद्धति से उपर्युक्त तीन सिद्धान्तों के अतिरिक्त वे अन्य लाभ भी अध्यापकों को हो सकते हैं जो आधुनिक शिक्षा-शास्त्र के सिद्धान्तों पर आश्रित हैं।

शिक्षा-शास्त्र का पहला सिद्धान्त यह है कि अध्यापकों का ध्यान सर्वदा विद्यार्थियों की मनोवृत्ति की ओर रहे और उनकी पाठन-शैली भी उनकी रुचि के अनुकूल हो। छोटे-छोटे बच्चों की रुचि अधिकतर खेल खेलने और गाना गाने में रहती है। इस लिए उनके पढ़ाने की शिक्षा-शैली गाने और खेल-कूद के द्वारा होनी चाहिए।

यह योजना हम जिनके लिए बना रहे हैं, हमारे वे विद्यार्थी प्रौढ़ कृषक हैं। उनकी मनोवृत्ति भक्तिभाव की ओर झुकी

हुई है। वे बहुधा कंठस्थ भजन और गानों से प्रेम रखते हैं। अतएव हमें अपनी शिक्षा-प्रणाली भी ऐसी रखनी चाहिए, जो उनकी मनोवृत्ति से मिलती-जुलती हो। यदि हम अपने पढ़ाने का ढंग उनकी रुचि के अनुकूल रक्खेंगे, तो वे विद्यार्थी बड़े चाव तथा प्रेम से पढ़ेंगे और हमें शिक्षण में अधिक सफलता मिलेगी।

शिक्षा-शास्त्र का दूसरा नियम यह है कि शिक्षा का विषय ऐसा हो, जो विद्यार्थियों के जीवन को कार्य्य-क्षम बनाता हो। हम प्रति दिन देखते हैं कि हमारे देहाती किसान अधिकतर रामायण, आल्हा, फाग और बिरहा से बहुत प्रेम रखते हैं। अतः उनके पढ़ाने के विषयों में इन बातों का समावेश क्यों न किया जाय? इस प्रकार शान्तिपुर-पद्धति के द्वारा शिक्षा देने से शिक्षा-शास्त्र के दूसरे नियम का मन्तव्य भी पूरा हो जाता है।

आज तक का अनुभव कहता है कि देहात के स्कूलों से उत्तीर्ण, चतुर्थ श्रेणी के विद्यार्थी, पाँच वर्ष के अन्दर, पुनः निरक्षर बन जाते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि उनके पठित विषयों में, ऐसा कोई विषय नहीं रक्खा गया है, जो उनके जीवन से सम्बन्ध रखता हो और वे उस विषय की पुस्तकें हर समय पढ़ते रहें और साथ ही उनका पढ़ने का अभ्यास भी निरन्तर जारी रहे। अभ्यास छूट जानेसे ही वे अपने आप निरक्षर बन जाते हैं। शान्तिपुर-शिक्षा-पद्धति में इन बातों का ध्यान रक्खा गया है।

ऊपर यह बात लिखी जा चुकी है कि देहात के किसान रामायण-आल्हा आदि से अत्यधिक प्रेम रखते हैं। पढ़ना-लिखना सिखाने के पूर्व उन्हें यह अनुभव होता है कि हमारे गाँव में एक भजन-मंडल स्थापित हो रहा है। उस भजन-मंडल में वे प्रेम के साथ सम्मिलित होते हैं। इसी सिलसिले में उनसे

यह प्रतिज्ञा ले ली जाती है कि जैसे बिना स्नान किये वे भोजन नहीं कर सकते, वैसे ही प्रौढ़-पाठशाला में शिक्षित होने के अनन्तर बिना रामायण की दो चौपाई पढ़े वे भोजन भी न करें। यदि वे अपनी इस प्रतिज्ञा का पालन करते रहें, तो यह निश्चित है कि उनके ऊपर निरक्षरता का कलंक फिर से नहीं लग सकता।

इस शिक्षा-शैली के प्रयोग से यदि हम देहात में स्थायी रूप से भजन-मंडली स्थापित करके उसका संचालन सुचारु रूप से कर सकें, तो हम ग्रामवासियों को निम्नाङ्कित लाभ पहुँचाकर उनका पुनरुत्थान करने में अवश्य सफल होंगे।

(१) पढ़े-लिखे आदमी फिर से अपढ़ न बनेंगे।

(२) देहात के लोगों में जो मनहूसियत तथा उदासीनता आ गई है, उसे हम भजन-मण्डली के द्वारा दूर कर सकेंगे।

(३) हर समय उनके कानों में ऐसा उपदेश सुनाई पड़ेगा, जिससे उनका मानसिक तथा आचारिक सुधार होगा। दुराचार, पारस्परिक वैमनस्य एवं विश्वासघात आदि बुराइयों का नाश होगा। वे इन उपदेशों से लाभान्वित होकर स्वयं आदर्श समाज नीति को स्थापित करने में समर्थ होंगे।

(४) देहात में भजन-मंडलियों की स्थापना करके साक्षरता का प्रचार करने से हमें यह पूर्ण आशा है कि भजन-मंडल में प्रति मंगलवार के दिन तुलसीदासजी की रामायण गायी जायगी। तुलसीदास की रामायण हिन्दी-साहित्य का एक अमूल्य रत्न है। उसको पढ़ने में विद्वान से विद्वान और मूर्ख से मूर्ख एक ही भाव तथा रस का आस्वादन करता है। हमारी यह आशा व्यर्थ न होगी कि सुशिक्षित और अशिक्षित जनों में जो अन्तर आज दिखलाई पड़ता है, वह रामायण की भजन मंडली द्वारा शीघ्र ही दूर हो जायगा। तुलसीदासजी की

रामायण आध्यात्मिक विषय तथा सांस्कृतिक प्रगति में साम्य भाव उत्पन्न करनेवाली एक अमूल्य वस्तु है।

साक्षर बनाने की शिक्षा-प्रणाली

शान्तिपुर-पद्धति से पढ़ाने के लिए जो चार्ट (नक़्शे) बने हैं, वे परिशिष्ट ब में दिये गये हैं।

(१) किसी गाँव में प्रौढ़ पाठशाला खोलते समय अध्यापक अपने विद्यार्थियों से भूलकर भी यह न कहें कि हम प्रौढ़-पाठशाला जारी कर रहे हैं; क्योंकि स्कूल के विषय में जन साधारण की धारणा उत्साह-पूर्ण नहीं है। इस कथन की अपेक्षा यह कहना अच्छा होगा कि चलो, हम अपने गाँव में एक भजन-मंडल की स्थापना करें और भजन, रामायण आदि पुस्तकें पढ़ने के लिए कुछ अक्षरों से पहचान कर लें। ऐसा कहने से प्रौढ़ पाठशाला का प्रारम्भ अच्छा होगा।

(२) अध्यापक प्रौढ़ों को भली भाँति समझा दें कि पढ़ना पहचान ही का नाम है और नागरी लिपि के पढ़ने में हमको केवल ३५ अनोखे आदमी रूपी चिह्नों से पहचान कर लेना है। यह ३५ व्यक्ति रूपी चिह्न भिन्न-भिन्न वेष-भूषा में अवतरित होते हैं। वे कभी टोपी, कभी साफ़ा, कभी नीचे हँसिया आदि की आकृतिवाले स्वरूप धारण करते हैं। इस बहुरूपियापन से यह न समझ लेना चाहिए कि ये चिह्न ३५ से अधिक हैं। इसे स्मरण रखना चाहिए कि ये पैंतीस ही व्यक्ति रूपी चिह्न हैं, जिनसे हमें पहचान कर लेनी है। रूप चाहे कितने ही क्यों न बदलें, लेकिन इनका परिचय तो बार-बार देखने और बार-बार नाम लेने से ही होगा।

हम जिस शिक्षा-पद्धति का समर्थन इस पुस्तक में कर रहे हैं, सम्भव है, उस शिक्षा-पद्धति से कुछ विद्यार्थी भड़क भी जायँ;

क्योंकि एक दीर्घ काल से उनके मस्तिष्क पर प्रचलित शिक्षा परिपाटी का इतना गहरा प्रभाव पड़ा है कि क्रमशः अक्षर सीखे बिना कोई पढ़ ही नहीं सकता। इस रूढ़ि ने उनके मस्तिष्क में घर कर लिया है, जिससे उनकी ऐसी धारणा हो गई है कि बिना अक्षर सीखे वे लिख-पढ़ नहीं सकते। पर उनकी यह धारणा सर्वथा निर्मूल है।

अब यदि कोई शंका करे कि अक्षरों से पूर्ण परिचय प्राप्त किये बिना शब्द कैसे पढ़ाये जा सकते हैं और उससे अक्षर ज्ञान कैसे हो सकता है, तो उसको समझा देना चाहिए कि केवल ३५ व्यक्ति-रूपी चिह्न हैं, जिनसे पहचान कर लेने से हमारा काम भली भाँति चल सकता है। यदि तुम संयोग वश किसी व्यक्तिरूपी चिह्न का नाम भूल गये, या उसका उच्चारण अशुद्ध कर गये, तो यह तुम्हारी भूल बार-बार चिह्न (अक्षर) देखने और उसका ठीक रीति से उच्चारण करने से दूर हो जायगी। विशेष रूप से तुमको अपना ध्यान शब्द-परिचय की ओर केन्द्रित करना चाहिए। इस प्रकार धीरे-धीरे सारी त्रुटियाँ अपने आप ठीक हो जायँगी।

पहला चार्ट लेकर विद्यार्थियों से कहिए कि देखो, इसमें एक बढ़िया भजन लिखा है। आओ, इसे दो-चार बार सब मिल कर कहें। इसके बाद चार्ट दिखाकर उन्हें बतला दीजिये कि यही भजन इस चार्ट में लिखा है। जैसे—

राम लछमन जानकी। जय बोलो हनुमान की॥

अब शब्दों के नीचे उँगली घुमाकर उनको वह शब्द दिखलाइए कि अमुक शब्द अमुक स्थान पर अंकित है। तदनन्तर उस चार्ट के छोटे-छोटे पोस्टर उनमें वितरित कर दीजिए और उन्हें अपनी उँगली उन शब्दों के नीचे घुमाकर पढ़ने के लिए तैयार कीजिए।

इस दशा में अध्यापक को चाहिए कि वह चार्ट के शब्द पृथक् पृथक् करके स्पष्ट रूप से समझा दे कि पहली पंक्ति में पहला शब्द "राम" दूसरा "लछमन" और तीसरा "जानकी" है तथा दूसरी लकीर में "जय" पहिला, "बोलो" दूसरा, "हनुमान" तीसरा और "को" चौथा शब्द है। तत्पश्चात् अध्यापक भजन कहें और कहते समय शब्दों के नीचे उँगली घुमाएँ और छात्रों से भी छोटे-छोटे पोस्टरों के ऊपर वैसा ही करने के लिए कहें।

प्रारम्भ में भजन से थोड़ा परिचय करा देने के बाद, एक-एक शब्द, उनके नेत्रों के सामने उपस्थित करें शब्द दृष्टिगोचर होते ही प्रौढ़ छात्र तुरन्त अपने पूर्व परिचित शब्द को पहचान लें कि यह अमुक शब्द है। जैसे—"राम" दिखलाने के पश्चात् वह शीघ्र "राम" और "लछमन" आने के बाद "लछमन" तथा "जानकी" आने पर "जानकी" कहें। इस पद्धति का नाम "देखो आर बोलो" है।*

इस ढंग से भजनों के चार्ट पढ़ाये जा सकते हैं। नये चार्टों का उपयोग करते समय पठित चार्टों की पुनरावृत्ति अवश्य कर ली जाय। इस ढंग से दस-पन्द्रह दिन के अन्दर १६ भजनों के चार्टों से अध्यापक अपने विद्यार्थियों का परिचय करा सकता है। एक बार १६ चार्टों का परिचय करा लेने के बाद अध्यापक फिर से पहले भजन का चार्ट दुहरा दें और चार्ट के शब्दों से भली भाँति परिचय करा दें। तत्पश्चात् उस चार्ट में जितने अक्षर आते हैं, विद्यार्थियों को उसी चार्ट के अक्षर कार्ड लेकर ताश की भाँति लगाकर कर वही अक्षर दिखलाकर पहचान का अभ्यास करा दें। अब अध्यापक श्यामपट पर अक्षर लिख

---

* मैजिक लैंटर्न के आधार पर, दृष्टि-क्षेप से, शब्द पहचानने के लिए एक स्लाइडिंग-फ्रेम बनाया गया है, उसका चित्र परिशिष्ट 'स' में दिया गया है।

कर उसके भिन्न-भिन्न खण्ड समझा दें और विद्यार्थियों को उनके लिखने का आदेश कर दें।

दुबारा ११ भजन चार्टों की पुनरावृत्ति के समय मात्रा-चार्ट और संयुक्ताक्षरों के चार्ट विद्यार्थियों को समझा दें। जैसा हमने पहले कहा है कि ३५ व्यक्ति रूपी अक्षर, जो भिन्न-भिन्न रूप धारण करके सामने आते हैं और अपने उच्चारण में भी फेर-फार कर लेते हैं उन्हें अध्यापक भली भाँति समझा दें। इस सम्बन्ध में नीचे लिखी बातों का ध्यान रखना आवश्यक है—

(१) नागरी लिपि अत्यन्त शास्त्र-सम्मत और स्वर-शास्त्र सम्बद्ध है। जैसे—अ का ओ होगा, वैसे ही क का को च का चो और म का मो होगा। इसी प्रकार जैसे क का क्, वैसे ही ड त प का क्रमशः ड्, त्, प् होगा।

मिलावट के भी कुल ५ नियम हैं। परन्तु चार्ट पढ़ाते समय अध्यापक विद्यार्थियों को उक्त नियम पहले न समझा दें, वरन् वे इस बात का प्रयत्न करें कि दिये हुए उदाहरणों से विद्यार्थी स्वयम् नियम बना लें। इस शिक्षा-पद्धति को उदाहरणों से नियम निकालने वाली पद्धति कहते हैं।

(२) प्रौढ़ छात्रों को लिखना सिखाना बायें हाथ का खेल है। हाँ, यह बात बच्चों के लिए कठिन है। प्रौढ़ों को अपनी अँगुली के ऊपर अधिकार रहता है। वे जैसी चाहें वैसी कलम घुमा सकते हैं। बच्चों के हाथ से तो कलम भागती-सी है; क्योंकि वह उसे ठीक ढंग से पकड़ भी नहीं सकते। यदि अध्यापक अक्षरों की रूप-रेखा की तस्वीर प्रौढ़ छात्रों के मस्तिष्क में भली भाँति बैठा सकें, तो नेत्र बन्द कर लेने पर भी वे अक्षरों की बनावट का वर्णन सही-सही कर सकते हैं और उन्हें तुरन्त लिख भी सकते हैं।

(३) प्रौढ़ छात्रों को पाटी या स्लेट पर लिखना सिखाना ठीक होगा या नहीं, यह विवाद-ग्रस्त प्रश्न है। हमारे विचार से तो प्रौढ़ छात्रों को तख़्ती न देना चाहिए। उनको लिखना सिखाने की शिक्षा का उद्देश्य ही यह है कि वे अपने घरेलू काम-काज जैसे—चिट्ठी, निमंत्रण-पत्र, अर्ज़ी तथा रसीद आदि लिख सकें। उनके दैनिक काम में आने वाली ये सब बातें काग़ज़ पर ही हो सकती हैं। यदि पहले ही से काग़ज़ पर लिखने का अभ्यास प्रारम्भ कर दिया जाय, तो उससे ज़्यादा हानि नहीं है; क्योंकि काग़ज़ का जितना नुक़सान बच्चे करते हैं, उतना प्रौढ़ छात्र नहीं करेंगे। प्रौढ़ों को लिखना सिखाने के निमित्त हमने विशेष प्रकार की स्क्रिपि-कापियाँ तैयार करवायी हैं। लिखना सिखाने में उन्हीं का प्रयोग करना चाहिए।

परिशिष्ट "घ" में जो १६ भजन चार्ट दिये गये हैं, उन चार्टों के अन्दर नागरी लिपि के सभी अक्षर आ गये हैं। हमारे कहने का अभिप्राय यह नहीं है कि नागरी अक्षरों का ज्ञान देने के लिए हमने जो भजन चुने हैं वे ही सर्वश्रेष्ठ हैं। नहीं, शिक्षा-विशारद इनसे भी अधिक अच्छे भजन-चार्ट निर्माण करें तो साक्षरता के निमित्त वे भी अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। हमने ये चार्ट तथा शिक्षण-पद्धतियाँ पाठकों के सामने इस आशा से रक्खी हैं कि वे उन्हें कम से कम पथ-प्रदर्शक का काम दें। क्योंकि इस प्रणाली का प्रयोग, केवल हिन्दी ही में नहीं, वरन् अन्य भाषाओं तथा लिपियों में भी, सफलता-पूर्वक हो सकता है। जिन सिद्धान्तों के आधार पर इन चार्टों का चुनाव करना चाहिए, वे निम्नाङ्कित हैं। इन सिद्धान्तों की जानकारी से बङ्गाली, तामिल, तेलगू, मलयालय आदि भाषाओं में भी ऐसे चार्ट बनाए जा सकते हैं—

(१) भजन छोटे-छोटे हों और वे १५ या २० से अधिक

न हों। इस बात पर विशेष ध्यान रक्खा जाय कि लिपि के सभी अक्षरों का समावेश हो जाय।

(२) चुने हुए भजन ऐसे हों, जिनसे देहात के आदमी परिचित हों अथवा ऐसे, जो शीघ्रातिशीघ्र उनकी जिह्वा पर बैठ सकें। अधिकांश में वे धार्मिक भावों से भरे और विनोद तथा हास्यमय हों। दैनिक काम-काज से सम्बन्ध रखनेवाले भजन भी प्रौढ़ छात्रों को अत्यन्त प्रिय लगते हैं। इसलिए कुछ भजन ऐसे भी चुन लेना चाहिए।

शान्तिपुर-शिक्षा-प्रणाली के मनोवैज्ञानिक मूल सिद्धान्त

(१) **मनोवृत्ति :**—पाठ पढ़ते समय छात्रों का मानस-क्षेत्र इतना जाग्रत हो कि पाठ्यविषय को उनकी मनोवृत्ति चट से ग्रहण कर ले। इसी अभिप्राय से हम उनके धार्मिक भावों से अपनी शिक्षा-प्रणाली का श्रीगणेश करते हैं और उन्हें परिचित से अपरिचित की ओर क्रमशः ले जाते हैं। इस विषय में पहले ही यथेष्ट प्रकाश डाला जा चुका है।

(२) **दृष्टिकोण :**—आँखों का दृष्टिकोण ६०° का है। इस कोण के अन्दर आई हुई सभी वस्तुओं को आँखें एकदम देखती हैं। दृष्टि पहले सम्पूर्ण वस्तु पर जाती है, न कि उसके किसी अवयव विशेष पर। जैसे किसी परिचित या अपरिचित मकान पर दृष्टि-क्षेप हुआ, तो नेत्र पहले सम्पूर्ण मकान को देखकर उसका पूरा चित्र ग्रहण कर लेंगे, न कि किसी विशेष भाग का। इसके बाद यदि हम सूक्ष्म दृष्टि से देखेंगे, तो मकान की खिड़की, दरवाज़ा, झरोखा आदि की ओर भी उसका लक्ष्य होगा। इसी प्रकार किसी अनूठे या परिचित शब्द के पढ़ने में दृष्टि-क्षेप पूर्ण शब्द पर ही होगा, न कि अक्षर और मात्रा की ओर। अतः नैसर्गिक शैली वही है, जिसे हम वाक्य-पद्धति के

नाम से पुकारते हैं और जो दृष्टि-क्षेप की स्वाभाविक गति से सिद्ध होती है।

प्रचलित शिक्षा-परिपाटी में लिपि के सब अक्षरों से पहले परिचय करा दिया जाता है। उसके बाद अक्षरों के योग से बने हुए दो-दो, या तीन-तीन शब्द पढ़ाये जाते हैं। शब्द के बाद मात्रा और मात्रा के पश्चात् वाक्य पढ़ाने का अभ्यास कराया जाता है। यह शिक्षा-प्रणाली अत्यन्त नीरस, क्लिष्ट और मानसिक थकावट पैदा करनेवाली है। सम्भव है, अध्यापक के भय से छोटे-छोटे बच्चे इस पद्धति से भी कुछ दिनों में कुछ सीख भी जायँ। लेकिन प्रौढ़ छात्रों को इस ढंग से कुछ सिखाना असम्भव है; क्योंकि उनका मन बच्चों की तरह परिवर्तनशील नहीं होता। दूसरी बात यह है कि दिन के थके हुए प्रौढ़ छात्रों के सामने जब अक्षर-प्रणाली रक्खी जायगी, तो सम्भव है, वे यों ही १५ या २० दिन तक आकर स्कूल में पढ़ें। लेकिन कई जगहों के अनुभव से पता चलता है कि प्रचलित शिक्षा-प्रणाली की नीरसता तथा क्लिष्टता से उकताकर प्रौढ़ लोग पाठशाला छोड़ बैठते हैं। अतएव हमारी शिक्षा-शैली मनोरञ्जक, सरस और काम की होनी चाहिए। पाठशाला बन्द करते समय प्रौढ़ छात्रों के हृदय में एक ऐसा विश्वास पैदा कर के उन्हें छुट्टी देना चाहिए कि वे अपने मन में उत्साह से कहें कि हम आज एक नयी बात सीख आये हैं। इसी प्रकार प्रति दिन उनके उत्साह और विश्वास को बढ़ाते जाने की आवश्यकता है।

प्रचलित शिक्षा-प्रणाली जिन सिद्धान्तों पर निर्भर है, यहाँ उनकी अनुपयोगिता तथा अस्वाभाविकता दिखलाना भी उचित जान पड़ता है। हम जानते हैं कि अभी बहुत से ऐसे शिक्षा-शास्त्रज्ञ हैं जिनका विश्वास यह है कि जो चीज़ पढ़ाई जाय, वह पूर्ण रीति से और क्रम-बद्ध पढ़ाई जाय। बच्चों को

सर्वप्रथम अक्षर पढ़ाने का क्रम अस्वाभाविक है। यह व्याकरण-शास्त्र के नियमों से बना है : क्योंकि व्याकरण में अक्षरों का वर्गीकरण कंठस्थ, तालव्य और दन्तव्य इत्यादि स्वरोत्पत्ति के स्थान के अनुसार किया गया है। यह वर्गीकरण व्याकरण शास्त्र की दृष्टि से उचित होगा। पर अक्षर-ज्ञान के लिए तो यह सिलसिला अस्वाभाविक और अनावश्यक है। अतः अपठितों के सामने यह सवाल ही नहीं उठता कि वह पहले र, और क, पढ़ें अथवा म या ज्ञ पढ़ें।

कुछ लोगों का विश्वास है कि हमने बच्चों को अक्षर-श्रेणी से पढ़ाया और हम सफल भी हुए। उनके उक्त कथन में कुछ भी तथ्य नहीं है। सम्भव है, उन्होंने अक्षर-श्रेणी से पढ़ाने का प्रयत्न किया हो, पर वास्तव में बच्चे उस ढंग से नहीं पढ़े। इसका सबूत यह है कि जब बाल-कक्षा के विद्यार्थियों की परीक्षा ली जाती है, तब बच्चे पूरा रटा हुआ पाठ आद्योपान्त पढ़ जाते हैं। पर पाठ के बीच में किसी अक्षर को पृथक् पूछने पर प्रायः वे चुप हो जाते हैं और उसका नाम नहीं बतला सकते। हाँ, पुनः जब वे पहिले से उसी अक्षर या शब्द तक पाठ पढ़ते हैं, तब बतला सकते हैं कि यह अमुक अक्षर या शब्द है। सच बात तो यह है कि बच्चे पढ़ने की स्वाभाविक शैली ही से पढ़ते हैं। पहले उन्हें शब्द और वाक्य कंठस्थ हुए। बार-बार वे वही शब्द देखते गये और देखने से उनसे उनका परिचय हुआ, न कि एक-एक अक्षर के जोड़ से पहले शब्दों का और फिर वाक्यों का—

हम ऊपर लिख चुके हैं कि अध्यापक चाहे जिस अरोचक और अस्वाभाविक पद्धति से पढ़ाये, किन्तु बच्चे सचमुच स्वाभाविक शैली ही से पढ़ना सीखते हैं। यह स्वाभाविक पद्धति शब्द और वाक्य द्वारा पढ़ाने की है। हमारी वाक्य-पद्धति आँखों की नैसर्गिक गति के आधार पर निर्मित है।

अतएव इस स्थल पर नेत्र की गति का वर्णन तथा उसके विषय में किये गये आविष्कारों का विवरण देना अप्रासङ्गिक न होगा।

आँखों की गति नापने के लिए पहला प्रयोग डॉक्टर ह्यूए (Huey) ने किया। उन्होंने नेत्रों के पलकों को खोल-कर उसके अन्दर मशीन लगाकर उसके ऊपर एक पिन लगा दी। पढ़ते समय जैसे-जैसे आँख घूमती थी, ठीक वैसे ही पिन भी घूमती जाती थी। अब उन्होंने एक शीशे पर कारिख लगा दी। अब पढ़ने के साथ-साथ घूमनेवाली पिन कारिख पर निशान करने लगी। इससे आँखों की गति का चिह्न कारिख के ऊपर बन गया। इस चिह्न से बोध हुआ कि आँख की गति धक्के से चलती है। वह उड़ती और खड़ी होती है। पक्षियों के फुदकने की तरह उसका चलन है। उसकी गति उड़ान और विश्रान्तिमय है। एक उड़ान में वह बहुत से शब्द और कभी-कभी पूरे-पूरे वाक्य ग्रहण कर लेती है। आँख की गति का अवरोध बहुधा अर्थ पूर्ण सम्बन्धित शब्दों के बाद होता है अथवा कभी-कभी बीच में अनभिज्ञ शब्द आने अथवा छापे की खटकनेवाली भूल देखने पर आँख चट से खड़ी हो जाती हैं। जैसे मोटर की गति ब्रेक से रुक जाती है। वैसे तो साधारण अशुद्धियों की वह उपेक्षा कर जाती है। आँख की उड़ानमय गति और बहुत से शब्द-समूहों को एकदम हड़प लेने की शक्ति का अनुभव प्रेस के नवशिक्षित प्रूफ़रीडर को ही हो सकता है। कम्पोज़िंग में ग़लतियाँ निकालते निकालते उसकी नाक में दम आ जाता है ; क्योंकि नेत्र अक्षर पढ़ते-पढ़ते नहीं चलते, न प्रत्येक अक्षर के बाद विश्राम लेते हैं। नेत्र की गति का सञ्चालन कैसे होता है इस बात को समझने के लिए यहाँ एक दृष्टान्त दिया जाता है।

कल्पना कीजिए कि हम एक ऐसे अत्यन्त परिचित मार्ग से, जिसके ऊपर बने हुए मकानों, दूकानों और तार के खम्भों

आदि से हमारा ख़ासा परिचय है तेज़ मोटर में बैठकर, जा रहे हैं। मोटर की गति तीव्र होने पर भी हम अपनी सभी पूर्व परिचित चीज़ों को, दृष्टि-क्षेप के अवकाश मात्र से, खट से पहचान लेते हैं। इसी प्रकार पूर्ण अभ्यास हो जाने के बाद शब्द-समुच्चय भी दृष्टि-क्षेप से पहचाने और पढ़े जाते हैं।

ऊपर यह लिखा जा चुका है कि आँख की गति उड़ान और विश्रान्तिमय है। यहाँ साथ ही साथ यह भी ध्यान देने की बात है कि पाठक परिचित अक्षरों और शब्दों को ही नहीं पढ़ते, बल्कि दृष्टि-क्षेप से विचारधारानुसार शब्द-समुच्चय को पहचानते हुए बड़े वेग से आगे बढ़ते हैं। नेत्र की गति के अनुसार हम अध्यापकों से यह कहना चाहते हैं कि वे अपने पढ़ाने के ढंग में नैसर्गिक गति के अनुकूल पढ़ाने की प्रणाली का समावेश करें। उन्हें चाहिए कि पाठ पढ़ाने के पूर्व वे स्वयम् पाठ पढ़ कर सुनायें और बच्चों से वाक्य में पूर्ण सार्थक शब्द-समुच्चय के बाद रुकने के लिए कहें, विराम-स्थान पर स्वल्प विराम बनाने का आदेश करें। व्यावहारिक दृष्टि से यही प्रणाली स्वाभाविक है। अतएव वे भूल कर छात्रों में पूर्ण सार्थक शब्द समुच्चय के बीच रुकने की आदत न डालें।

पढ़ने की गति और पठित विषय के ज्ञान के सम्बन्ध में अब तक बहुत से आविष्कार किये गये हैं। उन आविष्कारों से अनुभव हुआ है कि पढ़ने की गति जितनी तीव्र होगी, पठित विषय का ज्ञान भी उतना ही अधिक अच्छा होगा। हमारी देखी हुई बात है कि प्राथमिक कक्षाओं के बच्चे एक-एक अक्षर पढ़ कर पूरा वाक्य समाप्त करते हैं। वाक्य कितना ही सरल क्यों न हो, वे उसका अर्थ नहीं ग्रहण कर सकते। जैसे—राधामोहन की माँ ने कहा—बाज़ार जाओ। यह एक साधारण सरल वाक्य है। पर यदि बच्चा उक्त वाक्य को एक-एक अक्षर पढ़कर पूरा करे,

तो वह उसका अर्थ न ग्रहण कर सकेगा। अगर वह 'राधा मोहन की माँ ने कहा, बाज़ार जाओ।' इन तीनों इकट्ठा सार्थक शब्द-समुच्चयों पर विश्राम करते हुए पढ़ेगा, तो इसका अर्थ भी ग्रहण कर लेगा। इससे सिद्ध होता है कि पढ़ने की गति जितनी तीव्र होगी, उसका अर्थ ज्ञान भी उतना ही अधिक स्पष्ट होगा। अतएव अध्यापकों का लक्ष्य केवल अक्षर ज्ञान दे देना ही न हो कर शब्द-समुच्चय के द्वारा पढ़ाने की गति में स्फूर्ति पैदा करने की ओर भी होना चाहिये।

पढ़ने की गति बढ़ाने की दो रीतियाँ

१—पाठकों को विचार-धारा में छोड़ दो। जैसे—शिक्षक मनोरञ्जक और सुपठन के ढंग से पाठ्यपुस्तक की कोई कहानी छात्रों को सुना दें और तत्पश्चात् उनसे पाठ पढ़ने के लिए कहें। इस रीति से पढ़ते समय छात्र, मन में बनी हुई विचार-धारा की सहायता से, पठित विषय को क्रमशः ग्रहण करते हुए अग्रसर होंगे।

२—इससे अधिक अच्छा ढंग यह है कि वाक्य का विषय भली भाँति समझाकर छात्रों को गाने की धारा में छोड़ दीजिए। उदाहरणार्थ रामायण की कोई भी चौपाई लीजिए। पढ़ाने के पूर्व उसका प्रसंग भली प्रकार समझा दीजिए। इसके बाद पहले आप गाकर सुनाइये और फिर छात्रों से पढ़ने के लिए कहिए। ऐसा करने से उनमें पढ़ने की गति बढ़ेगी, जो महत्त्व-पूर्ण बात है। हमने अपनी शिक्षा-प्रणाली में इसी मार्ग का अवलम्बन किया है।

छात्रों को केवल अक्षर-ज्ञान दे देना ही अध्यापक का प्रधान लक्ष्य नहीं है। वरन् उनमें पढ़ने की स्थायी रुचि उत्पन्न करना ही उसका प्रमुख कर्त्तव्य है। ग्रामीण जनता में स्थायी रुचि, उनके दैनिक जीवन के प्रयोग में आनेवाले विषयों के पढ़ाने से हो

पैदा हो सकती है। जैसे—रामायण, आल्हा, बिरहा और फाग इत्यादि। अभी तक ग्रामवासियों के पढ़ने योग्य साहित्य का निर्माण नहीं हुआ। इसलिए तब तक हमें उपर्युक्त विषयों के द्वारा पढ़ना सिखाकर संतोष करना चाहिए। ये विषय उनके दैनिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाले और उनकी रुचि के अनुकूल हैं। इन्हीं के द्वारा हम उनकी पढ़ने की रुचि को स्थायी बनाने में समर्थ होंगे। यही ध्यान में रखकर उनकी मनोवृत्ति के आधार पर, जिस शिक्षा प्रणाली का हम समर्थन कर रहे हैं, आशा है, वह अधिक रुचिकर ग्राह्य, और उपयोगी प्रमाणित होगी।

सम्भव है, हमारी इस शिक्षा-प्रणाली पर कुछ शिक्षा-विशारद आक्षेप करने का कष्ट करें। वे कहेंगे कि इस प्रणाली के द्वारा छात्रों को जो ज्ञान दिया जायगा, वह अस्पष्ट और भ्रमात्मक होगा; क्योंकि उनकी शैली का मूल सिद्धान्त यह है कि जो चीज़ पढ़ाई जाय, उसका पूर्ण ज्ञान करा दिया जाय। उनके विचार से, ज्ञान-दान में, थोड़ी-सी भूल भी भयङ्कर है; क्योंकि ज्ञान-दान और शिक्षा-ग्रहण में जो त्रुटि हो जाती है, वह उसी दशा में पड़ी रहती है। इस अशुद्ध छाप को बच्चों के मानस-पटल से मिटाना बहुत दुष्कर है। उनका यह सिद्धान्त अन्ध विश्वास की भित्ति पर टिका है। इस सिद्धान्त के पीछे कुछ विचार-परम्परा भी है। ऐसी दशा में यहाँ उनके सिद्धान्तों का समीक्षण करना आवश्यक जान पड़ता है।

लार्ड बेकन ने इस सिद्धान्त को पाठकों के सामने इस रूप में रक्खा था कि मन एक शीशा या कोरे सफ़ेद काग़ज़ के समान है। उसके ऊपर चाहे जैसी छाप लगाई जा सकती है। जैसी छाप होगी, वैसा ही मन का झुकाव होगा। यदि मन रूपी श्वेत पत्र पर छाप ग़लत होगी, तो मुद्रण भी ग़लत होगा।

जान पड़ता है, बेकन साहब का कहना यह था कि जैसे ग्रामोफ़ोन के रिकार्ड या फोटोग्राफ़ी के फ़िल्म पर, क्रम से, ध्वनि और प्रकाश की मुहर लगती है, वैसे ही मन के ऊपर भी देखी-सुनी और शिक्षार्जित वस्तुओं की सील मुहर लगती है। यदि इन छापों में ग़लती होगी तो ज्ञान भी ग़लत होगा। कदाचित् लार्ड बेकन ने दृष्टान्त के रूप में मन को शीशा रूपी कहा हो। लेकिन समझनेवाले उसका अर्थ दूसरा ही समझ गये; क्योंकि मन वैसा नहीं है। उसकी ग्रहण-शक्ति फोटोग्राफी के फ़िल्म या ग्रामोफ़ोन के रिकार्ड की तरह जड़ नहीं है। मन तो अत्यन्त प्रतिगामी और सजीव है। वह बाह्य वस्तुओं के प्रभावानुसार उनके ग्रहण और त्याग में स्वतन्त्र है।

अध्यापकों को प्रत्येक कक्षा में चार प्रकार के बालक मिलेंगे—

(१) वे, जो अध्यापक के पढ़ाने की ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते।

(२) वे, जिन्हें अध्यापक एक बात समझा रहा है, पर वे कुछ दूसरा ही समझ रहे हैं।

(३) वे, जो अध्यापक के समझाये हुए विषय को भली प्रकार हृदयङ्गम कर लेते हैं।

(४) वे, जो अध्यापक के पाठ्य विषय को समझते हुए एक क़दम और आगे बढ़ते नज़र आते हैं।

यहाँ अब हमको इस बात पर विचार करना है कि चार प्रकार की ये भिन्नताएँ कक्षाओं में क्यों होती हैं? पहिले प्रकार में विद्यार्थी का मन कक्षा में नहीं था। वह मन दूसरे विचारों में रँगा हुआ था। उसके कान और नेत्र तो बाहर से खुले देख पड़ते थे पर वह यथार्थ में अन्दर से बन्द थे; क्योंकि उसकी विचार धारा अन्यत्र बह रही थी।

दूसरे प्रकार का कारण यह है कि उसकी अन्तर्य्यामी

विचार धारा एक ओर से प्रवाहित हो रही थी. इतने में बाहर से शब्द सुनाई पड़ा। अब दोनों के मेल से उसकी विचार-धारा एक तीसरे ही मार्ग से बहने लगी।

तीसरा प्रकार उन छात्रों में पैदा होता है, जिन्होंने मन से तो अन्य विचार बिल्कुल हटा दिये हैं, पर जो सावधानी से सुनते तथा उसे समझते रहे हैं।

चौथा प्रकार उन शिक्षार्थियों में उत्पन्न होता है, जिनकी विचार गति अध्यापक की विचार-धारा में तल्लीन होकर उत्साह के वेग से दो क़दम आगे चली जाती है। यह सब ग्रहण-शक्ति पर तो निर्भर है ही, पर इनका प्रमुख आधार मनोवृत्ति ही है। मन शीशे की तरह एक जड़ पदार्थ है, इस सिद्धान्त को उड़ा दीजिए और फिर देखिए कि वह किस ढंग से ज्ञान ग्रहण करके अपने सिद्धान्तों में परिवर्तन कर लेता है। यह एक साधारण बात है कि दस या पन्द्रह साल का बच्चा कुत्ते का वर्णन और उसकी परिभाषा स्पष्ट रूप से कर सकेगा। उसके वर्णन एवं परिभाषा में प्रसंगानुसार क्रमशः किस प्रकार परिवर्तन हुआ होगा इसका काल्पनिक चित्र खींच कर यहाँ हम अपने पाठकों को समझाने का प्रयत्न करेंगे।

कदाचित् जब बच्चा एक या दो वर्ष का रहा होगा, तब वह एक छोटे से जानवर के साथ खेलता रहा होगा, जिसे लोग कुत्ते के नाम से पुकारते हैं। उस समय उसके मन में कुत्ते की परिभाषा यह बनी होगी कि कुत्ता साथ में खेलनेवाला एक सखा है। किसी दिन उसने कुत्ते को ज़ोर से भूँकते देखा होगा। तब झट उसने अपनी भाषा में यह शब्द और जोड़ लिये कि कुत्ता साथ में खेलनेवाला सखा और क्रोध में भूँकने वाला प्राणी है। अभी तक उसने सफ़ेद कुत्ते देखे थे। इसलिए उसकी परिभाषा में, सभी कुत्ते सफ़ेद होते हैं यह विचार

काम कर रहा था। लेकिन जब उसने कबरे, लाल और काले आदि अनेक रंग के कुत्ते देखे, तब उसके मन में कुत्तों के रंग रूप की परिभाषा बदलकर इस रूप में परिणत हो गई कि कुत्ते कई रंग के होते हैं। फिर एक दिन उसने देखा कि किसी-किसी कुत्ते की दुम और कान कटे तथा किसी के समूचे होते हैं; और कुत्ते आदमी को काटते भी हैं। अब उसके मन में कुत्ते के विषय में प्रसंगानुकूल परिवर्तन होते होते यह परिभाषा बनी कि कुत्ते खेलते, भूँकते, भिन्न-भिन्न रंग के होते, दुम और कान के कटे तथा समूचे दुम और कानवाले भी होते हैं। कहने का सारांश यह कि यदि कोई ज्ञान सिलसिलेवार और ठीक तरीक़े से पूर्ण न हुआ होगा, तो उत्तरोत्तर अनुभव से वह क्रम-बद्ध और पूर्ण हो सकता है। इसी प्रकार समस्त परिभाषाएँ शास्त्र-शुद्ध बनती हैं। सचमुच मन इसी ढंग से ज्ञानार्जन करता है, न कि विद्वानों की बनाई हुई परिभाषाओं के रटाने से।

अन्त में हमारा अनुमान है कि साक्षर बनानेवाली इस रीति में क्रम न होने से, सम्भव है, वह शिक्षा प्रणाली विशारदों को कुछ बेढंगी जँचे। ऐसे व्यक्तियों से निवेदन है कि हमारी शैली में पढ़े हुए छात्र, कुछ अनुभव के पश्चात्, स्वयम् परिभाषाएँ बना सकेंगे और तब हम उन्हें क्रम भी दे सकेंगे। लेकिन इस क्रम-हीन ढंग से ये हमारी दो उपयोगी बातें तो सिद्ध हो ही जाती हैं।

(१) इससे हम अपनी शिक्षा प्रणाली मनोरञ्जक और ग्राह्य बना लेते हैं।

(२) उनके मन में उत्तेजना पैदा करके परिभाषा और क्रम समझने की क्षमता उत्पन्न कर देते हैं।

यह शिक्षा-प्रणाली विशेषतया भारतीय देहाती प्रौढ़ कृषकों के लिए बनाई गई है। इस शिक्षा-शैली का आधार पढ़नेवालों

की रुचि पर रहेगा। हमारा विचार बाल-शिक्षा-प्रणाली में हाथ लगाने का नहीं है। न हमें इतना अवकाश है कि हम उसमें कुछ काट-छाँट करके उसे अपने काम की बना सकें। पर प्रचलित प्रणाली के प्रयोग कर्ताओं को हम यह राय देंगे कि वे हमारी शिक्षा परिपाटी को अपनाकर देखें कि बच्चों के उस ढंग से पढ़ाने में उन्हें कुछ सफलता मिलती है कि नहीं। यह हम जानते हैं कि हमारे १३ भजन चार्ट बच्चों का ध्यान आकृष्ट न कर सकेंगे। लेकिन उसी प्रकार के जैसे

१—हाथी घोड़ा पालकी—जय कन्हैया लाल की।

२—इधर-उधर टट्टर—बीच में कलट्टर।

बच्चों द्वारा निर्मित इन तुकबन्दियों के आधार पर चार्ट बनाकर पढ़ाने से बच्चे उन्हें बड़े चाव से पढ़ेंगे।

अनुभव से सिद्ध हुआ है कि १३ भजन चार्टों के द्वारा प्रौढ़ छात्र अक्षर और मात्रा डेढ़ दो मास के अन्दर ही भली भाँति सीख लेते हैं। इस के साथ-साथ संयुक्ताक्षरों का साधारण ज्ञान भी उन्हें हो जाता है। यह हमारे शिक्षण-पत्र की प्रथम सीढ़ी है। इस सीढ़ी के उत्तीर्ण छात्रों को 'हनुमान चालीसा' पुरस्कार के रूप में देना चाहिए। उनको डेढ़ मास तक प्रति मङ्गल को हनूमानचालीसा पढ़ने और पाठ करने का ढंग बतलाना चाहिए। इस प्रकार हमें आशा है कि देहात के किसान भक्ति-भाव से इस छोटी-सी पुस्तक का दैनिक पाठ करना सीख जायँगे।

इसके पश्चात् प्रौढ़ विद्यार्थियों के हाथ में ऐसी दूसरी पुस्तक देनी चाहिए, जो उनके लिए दूसरी सीढ़ी का काम दे। इस पुस्तक में हमने भिन्न-भिन्न कवियों के मनोहर २४ पद्य दिये हैं। इस सरस पुस्तक को प्रौढ़ छात्र दो मास में प्रसन्नता-पूर्वक समाप्त कर सकेंगे। इस प्रकार चार महीने के अन्दर छात्रों को

यथेष्ट अक्षर ज्ञान हो जायगा और वे रामायण पढ़ने के योग्य हो जायँगे।

कुछ लोग यह शंका करेंगे कि ३ या ४ महीने में निपट निरक्षर व्यक्ति रामायण पढ़ने की योग्यता कैसे प्राप्त कर सकता है, उत्तर में हम, अपने अनुभव के बल से, अध्यापकों और पाठकों को यह विश्वास दिला सकते हैं कि नागरी लिपि द्वारा ३ या ४ महीने में किसी व्यक्ति में रामायण पढ़ने की योग्यता का होना कठिन नहीं है। इसके दो कारण हैं—

१—नागरी लिपि अत्यन्त सरल और नियम-बद्ध है।

२—हम उन प्रौढ़-छात्रों को पढ़ाना चाहते हैं, जिनकी मनोवृत्ति और बुद्धि विकसित हो चुकी है।

छोटे-छोटे बच्चे किसी वस्तु को बहुत देर तक ध्यानपूर्वक नहीं देख सकते। उनकी ग्राह्य शक्ति इतनी दुर्बल होती है कि वे अपरिचित वस्तुओं को शीघ्र नहीं ग्रहण कर सकते। यह बात प्रौढ़ों में नहीं पाई जाती। लिखना तो उनके लिए बहुत ही सरल है। एक बार अक्षरों की आकृति उनके मस्तिष्क में बैठ जाने के बाद वह उस आकृति को कागज़ पर, बहुत आसानी से, खींच सकते हैं। वे अक्षरों की समता और भिन्नता जैसे—व ब म न आदि का अन्तर बहुत शीघ्र समझ जाते हैं। उनकी स्मरण-शक्ति उनकी प्रगल्भ बुद्धि के साथ बढ़ती है। प्रौढ़ों के इन मानसिक विकास से हमने अपनी इस शिक्षा-प्रणाली में पूरा पूरा लाभ उठाया है। अध्यापक भी इच्छानुसार इससे लाभ उठा सकते हैं।

सर्व साधारण जनता में प्रायः कहा जाता है कि छोटे बच्चे बहुत जल्द पढ़ जाते हैं, पर बुड्ढे सुग्गे नहीं पढ़ पाते। उनके इस कथन में कुछ भी तथ्य नहीं है। मनोविज्ञान का यह एक अकाट्य नियम है कि जिनकी बुद्धि अधिक प्रगल्भ होती है वे बहुत शीघ्र पढ़ सकते हैं। शर्त यह है कि पाठ्यविषय उनकी रुचि का रहे।

यह सही है कि छोटे-छोटे बच्चों को हम बलात्-भय और मार पीट के द्वारा—कुछ बातें पढ़ा सकते हैं, और बुड्ढे सुग्गों को इसके लिए बाध्य नहीं कर सकते। पर उनके सामने हम उनकी मनोवृत्ति के अनुसार पढ़ाने वाली मनोरञ्जक शैली रख कर उनकी प्रगल्भ बुद्धि से बहुत काम ले सकते हैं। सारांश यह कि यदि हम उनकी धारणा को शिक्षा-ग्रहण की ओर केन्द्रित करेंगे, तो निस्सन्देह वे बच्चों से जल्द पढ़ जायँगे। हम इस बात को निस्संकोच कहने के लिए तैयार हैं कि कुछ लोगों ने बुड्ढे सुग्गों को पढ़ाने का प्रयत्न किया और वे असफल हुए। पर इसमें उन बेचारे प्रौढ़ सुग्गों का कोई दोष नहीं है। दोष था, शिक्षकों की उस अग्राह्य और कष्ट साध्य शैली का, जिसका उन्होंने पढ़ाने में निरर्थक प्रयोग किया।

इस बात की सत्यता पर संसार विश्वास कर सकता है कि देहात के प्रौढ़ किसान क्लिष्ट से क्लिष्ट बातों पर विचार कर सकते हैं। जैसे—सहकारी बैंक के सदस्य बनकर सदस्यता के कर्तव्यों का समझना, मुश्तरका जिम्मेदारी महसूस करना, खेती के विषय में अपरिचित बातें समझना। पर खेद है, जब साक्षरता का प्रश्न उठता है, तो वे हताश हो जाते हैं और मन ही मन पछताने लगते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि साक्षर बनाने की आज तक की शैली ही बेढंगी रही है।

इस शिक्षा-प्रणाली के प्रचलित करने में हमारा एक और महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है, जो इस ज़माने में किसी सूरत से पूरा नहीं हो सकता और जिसमें सफल होने के लिए बहुत सी कठिनाइयों का हमें सामना करना पड़ेगा। वह है ग्रामीण बहूबेटियों में साक्षरता का प्रचार करना। जहाँ बच्चों और प्रौढ़ों को पढ़ाने के लिए यथेष्ट अध्यापक नहीं मिलते और साथ ही आर्थिक असुविधा की समस्या भी सामने आकर खड़ी हो जाने का अनु-

भव होता हो, वहाँ बहू-बेटियों को शिक्षा देने की कल्पना ही व्यर्थ है। परन्तु इस शिक्षा-प्रणाली को प्रचारित करते समय हमें यह आशा है कि हमारा यह ध्येय भी बहुत कुछ पूरा हो सकेगा। इस प्रणाली से, घर में बैठे-बैठे हमारे शिक्षित प्रौढ़ छात्र स्त्री-शिक्षा का काम भी सफलता-पूर्वक कर सकेंगे। यदि वे अपनी ओर से अपनी बहिन-बेटी तथा स्त्रियों को पढ़ाने का प्रयत्न करें, तो प्रत्येक गाँव में ४ या ६ रामायण पढ़ने की ख़ासी योग्यता रखने वाली स्त्रियाँ तैयार हो जायँगी। इस सरल शिक्षा-प्रणाली से प्रौढ़ किसान अपनी बहिन-बेटियों को आसानी के साथ पढ़ा सकेंगे, हमारा ऐसा विश्वास है। हम अपनी शिक्षा प्रणाली के अनुसार उन्हें ऐसे छोटे-छोटे अक्षर-कार्ड (पोस्टर) और किताबें देंगे, जो ग्रामीण स्त्रियों को पढ़ने की ओर आकृष्ट कर सकेंगे। अध्यापकों को चाहिए कि वे अपने प्रौढ़ छात्रों को स्त्री-शिक्षा के लिए विशेष रूप से प्रोत्साहित करें। जो प्रौढ़ अपनी गृहिणी में रामायण पढ़ने की योग्यता पैदा कर देंगे, उसे यदि हो सके तो शिक्षाधिकारी ५) पारितोषिक देने का प्रबन्ध करें। पारितोषिक देने के पूर्व किसी योग्य अध्यापिका के द्वारा उसकी परीक्षा लेने का आयोजन भी किया जाय इससे दो बातें साध्य होंगी—प्रौढ़छात्रों को पढ़ने में विशेष रुचि होगी और मकान के अन्दर जहाँ हमारी पहुँच असम्भव है, वहाँ भी शिक्षा का प्रकाश पहुँच जायगा।

चौथा अध्याय

पाठ्यक्रम और पढ़ाने की शैली

गत अध्याय में हम प्रौढ़-छात्रों को पढ़ना सिखलाने की प्रणाली का विवेचन कर चुके हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या पढ़ने के अतिरिक्त उन्हें भिन्न-भिन्न विषयों के ज्ञान की भी आवश्यकता है? यदि है, तो कितनी और किन-किन विषयों की। वर्तमान शिक्षा-विशारदों ने पाठ्यक्रम में कई तरह के विषय निर्धारित किये हैं। जैसे—इतिहास, भूगोल, अङ्क-गणित, बीज-गणित और व्याकरण आदि।

इस समुदाय में से पाठ्यक्रम के कौन-कौन से विषय, अपने प्रौढ़-छात्रों को, किस सीमा तक, पढ़ाने चाहिए, इसके लिए यहाँ एक पाठ्यक्रम निर्धारित करना आवश्यक जान पड़ता है।

संसार का ज्ञान अगाध और अनन्त है। यदि हम ज्ञानार्जन में अपना पूरा जीवन भी लगा दें, तो भी उसमें पूर्णता प्राप्त करना असंभव है। इसलिए हमें सभी आवश्यक तथा अनावश्यक विषयों पर विचार करना होगा। विषयों का निर्वाचन किन सिद्धान्तों के आधार पर होना चाहिए: यहाँ हमको इसी बात पर विचार करना है। प्रौढ़-शिक्षा का पाठ्यक्रम बनाते समय हमें इस दृष्टिकोण से देखना चाहिए कि—

(१) पाठ्यक्रम किन के लिए बनाया जा रहा है।

(२) छात्रों के जीवन को सफल बनाने के लिए कौन-कौन से विषय पढ़ाना आवश्यक है।

(३) विषयों की सीमा निर्धारित करना।

(४) पाठ्यक्रम के निर्धारित विषयों के पढ़ाने में अपना ध्येय निश्चित करना।

(५) उस ध्येय की पूर्ति के लिए किन-किन साधनों का अवलम्बन आवश्यक है।

जिस कृषक समुदाय को हम पढ़ाना चाहते हैं, उसे कार्य्य-क्षम बनाने के लिए, पाठ्यक्रम पर, अब हम व्यावहारिक दृष्टि-कोण से विचार करें और इस बात का पता लगायें कि उस समुदाय को अपने परिवार का श्रेष्ठ सदस्य बनाने, उसके गार्हस्थ्य जीवन को सुचारु रूप से संचालित करने और उसे सुयोग्य नागरिक बनाने के लिए किन-किन विषयों के ज्ञान की अनिवार्य्य रूप से आवश्यकता है। इसके लिये नीचे लिखी बातों पर ध्यान देना आवश्यक है :—

१—गार्हस्थ जीवन में कार्य्य-क्षमता

(अ) स्वच्छता का होना।
(ब) मकान में वस्तुओं का क्रम-बद्ध रखना।
(स) पारिवारिक जीवन में पारस्परिक व्यवहारों का ज्ञान।
(द) अर्थ का सदुपयोग। अपनी आय से अधिक व्यय न करना, मादक वस्तुओं से दूर रहना।

२—आर्थिक कार्य्य-क्षमता

आर्थिक उन्नति के लिए किसानों को, खेती करने के नये तरीक़ों का उपयोग बतलाना। जैसे—सिंचाई की सुविधा से लाभ उठाना, बीजों का सुधार, कृषि करने के नवीन औज़ारों के महत्त्व आदि की शिक्षा। आर्थिक लाभ की दृष्टि से उन्हें खेती से सम्बन्ध रखनेवाले उद्योग-धंधों का बताना भी ज़रूरी है। इन बातों के ज्ञान से वे अपनी फ़सलें अच्छी बनाकर दूनी-तिगुनी पैदावार बढ़ा सकेंगे। आर्थिक

उन्नति के लिए इस सम्बन्ध में निम्नलिखित जानकारी वाञ्छनीय है।

(क) अपने शासन, अधिकार तथा कर्तव्य।

(ख) महाजनों और सहकारी-समितियों से लेन-देन।

(ग) घर का हिसाब-किताब।

(घ) पटवारियों के कागज़ात के सम्बन्ध में आवश्यकीय बातें।

(ङ) कास्तकारी-ज़मींदारी अधिकार।

३—नागरिक कार्य्य-क्षमता

कृषकों को उन संस्थाओं का ज्ञान देना, जिनके अनुशासन में उनकी उन्नति सम्भव है। जैसे—ग्राम्य तथा जातीय पंचायतें, सहकारी समितियाँ, सम्मिलित उत्तरदायित्व से चलाये हुए कार्य्य आदि। इस ज्ञान के द्वारा उक्त संस्थाओं से उनका अच्छा सम्बन्ध स्थापित होगा और उनकी उन्नति का मार्ग उत्तरोत्तर सुगम होता जायगा।

कुछ ऐसी संस्थाएँ भी हैं, जो उनके लिए अलक्षित रहती हैं और जिनसे उनका कोई व्यक्तिगत सम्बन्ध भी नहीं रहता। इस कारण वे उनके कार्य्यों से अनभिज्ञ रहते हैं। लेकिन उनका अनुशासन उनके ऊपर रहता है। इसलिए उनका ज्ञान भी उनके लिए आवश्यक है। वे संस्थाएँ हैं डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, म्युनिसिपैलिटियाँ, पुलिस, सेना, न्याय-विभाग, कौंसिल, असेम्बली आदि। हमें चाहिए कि अपने प्रौढ़-छात्रों को इन संस्थाओं के कार्य्यों का ज्ञान करायें। इसके अतिरिक्त उन संस्थाओं का ज्ञान देना भी उनके लिए सर्वथा उचित है जिनसे उनका सदा सम्बन्ध रहता है। जैसे—डाकख़ाना, रेलवे, सड़कें, नहरें, बीमा-कम्पनी आदि।

४—सामाजिक कार्य्य-क्षमता

सामाजिक सदस्यता के नाते उन्हें अपने समाज की रचना, उसकी पूर्व परम्परा, सामाजिक त्यौहार, समाज में स्त्रियों का स्थान और उनका आदर आदि का ज्ञान देना भी आवश्यक है। प्रचलित कुरीतियाँ : जैसे—छुआछूत, जाति-पाँति का भेद, बालविवाह, अनमेल विवाह से उत्पन्न विषमता से बचने का सदुपदेश।

५—अवकाश के समय का सदुपयोग

देहात में काम करने के बाद कुछ .फुरसत का समय रहता है। लेकिन हमारे देहाती किसान उस समय का सदुपयोग नहीं करते। अवकाश के समय उनके चेहरों को देखिए, उन पर चिन्ता की रेखा झलमलाती नज़र आयेगी और वे चिन्ता सागर में डूबते-उतराते दीख पड़ेंगे। व्यर्थ काल्पनिक विचार-करके वे अपने सामने खिन्नता का राज्य बनाते-बिगाड़ते रहते हैं। हमें अपने ग्रामीणों में निम्नलिखित तीन प्रकार के मनुष्य मिलते हैं—

(१) वे, जो सदैव चिन्ता के दल-दल में फँसे रहते हैं और अपने मन के ऊपर व्यर्थ काल्पनिक चिन्ता का भार लाद लेते हैं। जिसका उनके स्वास्थ्य और आर्थिक दशा पर बहुत बुरा असर पड़ता है। इस श्रेणी में साधारणतः कुरमी, अहीर, लोध आदि रक्खे जा सकते हैं।

(२) दूसरे वे लोग हैं, जो अशान्ति प्रिय होते हैं, जिन्हें दुनिया भर के .खुराफ़ात और पार्टी-बन्दी में अवकाश के समय को बरबाद करने में मज़ा आता है। इस वर्ग में साधारणतः ब्राह्मण, क्षत्रिय और मुसल्मानों की गणना की जा सकती है।

(३) तीसरे वे लोग हैं, जो दुर्व्यसनों में लिप्त रहते हैं। ये

लोग भाँग, चरस, चंडू, शराब, ताड़ी, धूम्रपान आदि में मस्त रहते हैं। इस कक्षा में साधारणतः चमार, पासी, कहरिया, धोबी और फक्कड़ क्षत्रिय, ब्राह्मण आदि आते हैं।

इस प्रकार देहात के किसान अवकाश के समय का दुरुपयोग करके अपना स्वास्थ्य, जो मनुष्य मात्र के लिए एक अमूल्य चीज़ है, मटियामेट करते हैं। केवल इतना ही नहीं, बहुत से झगड़ालू व्यक्ति अवकाश के समय रुपया-पैसा पानी की तरह बहाते और बाद में हाथ मल-मलकर पछताते हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि लोग फ़ुरसत के समय ही लड़ाई झगड़े मोल लेते और फिर उन्हें पार्टीबन्दी का रूप देकर एक भयानक स्थिति पैदा कर देते हैं। फल यह होता है कि गाँव में विद्वेष की चिनगारियाँ फैल जाती हैं और हिंसक पशुओं की तरह लोग एक दूसरे का खून पीने के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं। ऐसी रोमांचकारी घटनाएं प्रति दिन सुनने में आती हैं।

हमारे समाज में मादक द्रव्यों के सेवन का प्रचार उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। यह बड़े दुःख की बात है कि हमारे बहुत से ग़रीब किसान, जिन्हें भरपेट भोजन भी नहीं मिलता, अपने तथा अपने बाल-बच्चों के खाने-पीने में कंजूसी करके मादक द्रव्यों के सेवन में बहुत ख़र्च कर डालते हैं। दुर्व्यसन-जन्य बुराइयों का यहाँ हम क्या ज़िक्र करें। इस विषय में तो बहुत से विद्वज्जन प्रकाश डाल चुके हैं। यदि अवकाश के समय का इसी प्रकार दुरुपयोग होता रहा तो भविष्य में समाज की क्या दशा होगी, इसकी कल्पना पाठक स्वयम् कर सकते हैं। अतएव हमें अपने किसान भाइयों की बुरी आदतें छुड़ाने, उन्हें सीधे, सच्चे मार्ग पर लाने, उनकी आर्थिक, मानसिक, औद्योगिक और नैतिक उन्नति करने तथा उनकी मुरझाई हुई आकृतियों को प्रफुल्लित करने की आवश्यकता है। रामायण के पठन-पाठन, शिक्षाप्रद कहानियों के

कथनोपकथन तथा कम-से-कम सप्ताह में एक बार एकत्र होकर प्रेमपूर्वक गाने-बजाने की बड़ी आवश्यकता है। अध्यापक गाने बजाने, सामुदायिक नृत्य, अच्छे-अच्छे प्रहसन और नाटकों के द्वारा ग्राम्यजीवन की शुष्कता दूरकर प्रसन्नता का साम्राज्य स्थापित कर सकते हैं। इनके अतिरिक्त वे उन सामाजिक त्योंहारों को, जिनमें आल्हा, फगुआ, बिरहा वग़ैरह किसान बड़े चाव के साथ गाते हैं, अच्छा रूप देकर कृषकों को सन्मार्ग पर ला सकते हैं। उनको देहाती भाइयों के कल्याणार्थ, उनके अवकाश के समय का सदुपयोग कराने के लिए, विशेष प्रयत्नशील होने की आवश्यकता है। आशा है, अध्यापक तथा प्रौढ़-छात्र इस ओर विशेष ध्यान देंगे : क्योंकि प्रौढ़-पाठशाला का यही प्रधान उद्देश्य है।

६—आध्यात्मिक उन्नति के लिए कार्य्य-क्षम बनाना

भारतवर्ष धर्म्म-प्रधान देश है। यहाँ के लोगों के हृदय में ईश्वरीय भय है। निस्सन्देह मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जो ईश्वर से अपना सीधा सम्बन्ध स्थापित करता है। कदाचित् अन्य योनियों में यह शक्ति नहीं है। थोड़े-बहुत अंश में सभी देशों के निवासी ईश्वर से प्रेम करते हैं। यह परमात्मा कहीं देव, कहीं ब्रह्म, कहीं ख़ुदा, कहीं गॉड आदि भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है। परन्तु मनुष्य के अन्तस्तल में एक ऐसी भावना छिपी रहती है, जिससे वह अदृष्ट से अपना नाता जोड़ लेता है, उस पर निस्सीम भक्ति तथा प्रेम करने लगता है। जहाँ उसकी समझ में कार्य्य-कारण भाव नहीं आता, वहाँ जय-पराजय, सुख-दुख के लाभ को उसके भरोसे छोड़ देता है और ऐसा करने से उसकी आत्मा को शान्ति मिलती है। अदृश्य तत्त्व पर विश्वास रखने से उसके दैनिक आचरण पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

बहुत से विद्वानों का कथन है कि ऐसा अदृश्य तत्त्व या ईश्वर का भय रहने से ही संसार ठीक मार्ग पर है। देहात के किसानों को फ़सलें दैव-इच्छा पर ही निर्भर रहती हैं। उनके अच्छे और बुरे होने के कार्य्य-कारण की कल्पना उनके लिए दुष्कर है। ऐसी दशा में वे अपने आपको ईश्वर का शरणागत मानकर आत्म-शान्ति प्राप्त करते हैं।

ईश्वर के भय से अपने गाँव, पड़ोस तथा परिवार का सम्बन्ध भी ठीक रहता है। यदि जनसमाज से ईश्वर का भय उठ जाय, तो स्वेच्छाचार-पूर्ण अशान्ति के दमन में महान् से महान् शक्ति भी सफल नहीं हो सकती। सनातन से उनके हृदयों में जमे हुए ईश्वरीय प्रेम तथा भय को अचल-अटल बनाने के लिए हमें सतत प्रयत्न करना चाहिए। अतएव अध्यापकों का कर्त्तव्य है कि वे प्रौढ़-छात्रों में जगन्नियन्ता के प्रति असीम शुद्ध प्रेम और अटल विश्वास पैदा करें। ऐसी बातों से उन्हें दूर रक्खें, जिनसे जातियों में द्वेष-भाव पैदा होने की सम्भावना हो; जन-साधारण के हृदय-क्षेत्र में परमात्मा का प्रेम-भाव स्थिर रहे और आजकल के जैसे साम्प्रदायिक झगड़े न उठें। ऐसे अपरिमेय ईश्वर-प्रेम की अभिवृद्धि हमारी समझ में रामायण के द्वारा हो सकती है; क्योंकि हिन्दी में इससे अधिक उच्चकोटि का भक्तिमय काव्य दूसरा नहीं है। इसमें काव्य, सदाचार, नीति और उच्च तात्त्विक ज्ञान ओत-प्रोत है। रामायण की सब से बड़ी विशेषता यह है कि आज तक किसी धर्मावलम्बी ने इस पर आक्षेप करने का साहस नहीं किया। इसे सभी मतानुयायी आदर की दृष्टि से देखते हैं। इसकी रचना ऐसे अच्छे ढंग से की गई है कि सभी सम्प्रदाय और धर्म के लोगों को इससे अमूल्य शिक्षाएँ मिलती हैं।

आशा है कि अध्यापक उसी तत्त्व और उसी ढंग से कथा का

सहारा लेकर मनोरंजक नीति और अगाध ईश्वरीय प्रेम विद्यार्थियों के मानस में भरने की चेष्टा करेंगे।

मनुष्य-जीवन के कार्य-क्षेत्र का विभाग करके हमने अपने पाठ्यक्रम में उसकी सार्वांगिक उन्नति का विशेष ध्यान रक्खा है। जीवन की उन्नति का उत्तरदायित्व बहुत कुछ उनके गुरुजनों की शिक्षा पर अवलम्बित रहता है; इस योजना के अनुसार अध्यापक ग्राम्य समाज के नेता हैं। आशा है, वे अपने इस कर्त्तव्य का पूर्ण पालन करेंगे।

प्रचलित पाठ्यक्रम को देखने से पता चलता है कि उसमें छात्रों की आध्यात्मिक, औद्योगिक तथा गार्हस्थ्य कार्य्य-क्षमता का बहुत कम ध्यान रक्खा गया है। उसमें जहाँ तहाँ इतिहास भूगोल, गणित, व्याकरण आदि विषय रखे गये हैं। इसमें शिक्षा विशारदों का कोई दोष नहीं है; क्योंकि वास्तव में पाठ्यक्रम में प्रचलित विषयों को निकालकर नवीन विषयों का समावेश करना एक टेढ़ा काम है।

इस अध्याय में प्रौढ़-छात्रों का कार्य्य-क्रम बनाने के लिए जिन दृष्टिकोणों का उल्लेख किया गया है उनसे यही निष्कर्ष निकलता है कि अध्यापक पढ़ाते समय उन्हीं बातों पर अधिक ज़ोर दें। देहाती जीवन का पृथक्करण यहाँ जिस पहलू से किया गया है, उसे पुष्ट करने के लिए वैसी पुस्तकें नहीं लिखी गईं, न भविष्य में शीघ्र लिखे जाने की आशा है। यदि अध्यापक चाहें तो भिन्न-भिन्न पुस्तकें पढ़कर उनके ज्ञान पर प्रकाश डाल सकते हैं। उन्हें समझ लेना चाहिए कि पुस्तकीय ज्ञान देना ही शिक्षा नहीं है। आज तक जितने महापुरुष, प्रकाण्ड पंडित तथा धुरन्धर विद्वान हुए हैं वे केवल पाठ्य पुस्तकें पढ़कर नहीं हुए। वरन् संसार का अनुभव प्राप्त करके स्थिति-प्रज्ञ बनकर वे उतने उच्च आसन पर पहुँचे हैं। अतएव अपने प्रौढ़-छात्रों को उचित शिक्षा

देने के लिए अध्यापकों को बहुत-सा मौखिक ज्ञान भी देना चाहिए।

भारतवर्ष में जिस समय लिखना-पढ़ना कम था उस समय ज्ञान का प्रचार प्रवचन और व्याख्यान के सहारे होता था और उस समय बहुश्रुत ही ज्ञानी कहा जाता था। अतएव अध्यापकों को चाहिए कि वे किसानों को बहुश्रुत बनाकर उनमें सांसारिक कार्य्यज्ञनता उत्पन्न करने की चेष्टा करें और जहाँ तक सम्भव हो, किताबों के द्वारा ज्ञान-वृद्धि का सहारा कम लें।

हमने प्रौढ़-पाठशालाओं के लिए जिन पुस्तकों की रचना की है, उनको अध्यापक किस दृष्टिकोण से पढ़ावें इसका संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जाता है।

इतिहास

इतिहास का नाम बदलकर हमने ऐतिहासिक कहानियाँ रक्खा है; क्योंकि इतिहास के नाम से किसान अनभिज्ञ और कहानियों के नाम से अभिज्ञ हैं; इसलिए वे प्रसन्नता के साथ उन्हें सुनेंगे। इस विषय में श्रीमाँडजी ने दो किताबें तैयार की हैं। किन्तु केवल उन्हीं का भरोसा करने से इतिहास पढ़ाने का मन्तव्य नहीं पूरा होगा।

कथा की सहायता से अध्यापक अपने प्रौढ़-छात्रों को आर्थिक, सामाजिक, औद्योगिक, धार्मिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों का पूरा-पूरा ज्ञान दें। समय-समय पर किस प्रकार सामाजिक परिवर्तन हुए, कौन-कौन से धार्मिक तथा राजनीतिक आन्दोलनों का जन्म हुआ, इसके कार्य-कारण का उसमें वे पूर्ण विवेचन कर सकेंगे। खेद की बात है कि प्रस्तुत पुस्तकों तथा प्रचलित इतिहासों से हम पूर्व परम्परा के आधारों का ज्ञान आधुनिक जनसमाज को नहीं दे सकते।

वेद्कालीन भारत का वह चेतनामय दृश्य, जिसमें ऋषि-मंडल, राजा-प्रजा का धर्म्म, वर्णाश्रम, संस्कार-विधि, गुरु-कुल आदि विषय हैं, विस्तारभय से इन ऐतिहासिक कहानियों में नहीं दिखाया जा सका है। इस कमी को अध्यापक अपने संचित सामाजिक तथा धार्मिक ज्ञान से पूरा कर सकते हैं। उपर्युक्त ज्ञान-दान का सुअवसर उन्हें रामायण और महाभारत की कथाएँ पढ़ाते समय प्रचुर परिमाण में मिलेगा।

अध्यापक इतिहास पढ़ाते समय महापुरुषों के जन्म-मृत्यु की तिथियों पर विशेष ध्यान न दें; बल्कि उनके सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक जीवन की ओर विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षित करें और उन्हें यह बतलावें कि ये महापुरुष कैसी परिस्थिति में अवतरित हुए, उन्हें कौन-कौन सी सामाजिक धार्मिक, राजनैतिक समस्याओं तथा त्रुटियों से उलझना और सुलझना पड़ा और इसमें उन्हें कहाँ तक सफलता मिली। यह बताना भी अधिक श्रेयस्कर होगा कि उनके जीवन का प्रभाव जनसाधारण के आचार-विचारों पर कितना पड़ा। महापुरुष सुखोपभोग के लिए नहीं पैदा होते। उनका जीवन जनता के कुत्सित विचारों, उनकी दूषित मनोवृत्तियों और अन्धपरम्परा पर आश्रित सामाजिक आचार-विचारों को उलट देने के लिए ही होता है।

भूगोल

यह विषय मौखिक पढ़ाया जाय। इसके लिए अध्यापक की वर्णन-शैली मनोरंजक और हृदयग्राही होनी चाहिए। वर्णन के लिए विषय का स्पष्ट ज्ञान भी होना आवश्यक है। भूगोल में उनके जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली बातें ही बताई जायँ। जैसे—तीर्थ-स्थान, मुख्य-मुख्य स्टेशन, व्यापारिक शहर और प्राचीन राजधानियाँ आदि।

पौराणिक कहानियाँ

पौराणिक कथाएँ पढ़ाते समय कथाओं के रहस्य और उपदेश पर विशेष ध्यान देना चाहिए। जैसे—ध्रुव की कहानी में एक ध्येय पर दृढ़ रहने की अटल निष्ठा, प्रह्लाद के जीवन में निस्सीम अनुपमेय भक्ति, हरिश्चन्द्र की कथा में वचनपूर्ति के लिए राजा का बलिदान या स्वार्थ-त्याग, सावित्री-सत्यवान में पातिव्रत धर्म, श्रवणकुमार में मातृपितृ-भक्ति, भीष्मपितामह की कहानी में कर्त्तव्य-परायणता की शिक्षा।

नागरिक शिक्षा

इस विषय पर श्रीमांडेजी की पुस्तक शीघ्र प्रकाशित होने वाली है। तब तक अध्यापक परिचित उदाहरणों के द्वारा रोचक ढंग से ग्राम्य पंचायतें, सहकारी समितियाँ, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, राज्यशासन विभाग आदि के विषय में नागरिकों के कर्त्तव्यों का ज्ञान दें।*

अध्यापक पाठशाला के समय के बाद कौटुम्बिक उत्सवों, सार्वजनिक त्योहारों और ग्रामीण पंचायतों में प्रौढ़-छात्रों को उनके काम की बातें बता सकते हैं। उनका कार्य केवल कक्षा ही में सीमित नहीं है। हर जगह, जहाँ उन्हें मौका मिले, देहातियों की अन्तर्बाह्य उन्नति के लिए सदा प्रयत्नशील बनना उनके लिए आवश्यक है।

गणित

प्रौढ़-छात्रों को गणित पढ़ाना अत्यन्त सरल है; क्योंकि उनकी बुद्धि परिपक्व रहती है। व्यावहारिक लेन-देन में, जहाँ कहीं गणित का प्रसंग आता है बिना पढ़े-लिखे किसान भी, ठीक

* इस समय यह पुस्तक छप रही है।—लेखक

ठीक हिसाब लगा लेते हैं। क्रम से १ से २० तक की गिनती, प्रचलित सिक्के तथा उनका मूल्य, तौल के बाँट: जैसे—छटाँक, सेर, पंसेरी, पैमाने इत्यादि का ज्ञान वे भली प्रकार रखते हैं।

यह सब होते हुए भी, खेद की बात है कि जहाँ-जहाँ प्रौढ़ पाठशालाएँ हैं, वहाँ-वहाँ आरम्भ में तो प्रौढ़ लोग गणित सीखने का उत्साह दिखलाते हैं; पर धीरे-धीरे वे इस विषय से भयभीत होने लगते हैं। तब यह होता है कि प्रौढ़-पाठशाला के अध्यापक, उकताकर उन्हें गणित पढ़ाना छोड़ देते हैं। इसका मुख्य कारण यह है शिक्षकों के पढ़ाने का ढंग ही अत्यन्त नीरस होता है और वे सरल बात को क्लिष्ट करने में बड़ी विद्वता दिखलाने लगते हैं।

गणित शब्द का अर्थ ही हिसाब है। प्रौढ़-पाठशाला के अध्यापकों से हमारी विनम्र प्रार्थना है कि वे इस विषय को गणित के नाम से न पुकारें। वे उनसे कहें कि चलो, अपने कारोबार में काम आनेवाला हिसाब-किताब लिखना—और करना—सीखो; क्योंकि सम्भव है वे गणित शब्द मात्र से चौंक जायँ। उन्हें चाहिए कि शुरू में वे किसानों को महाजनों के हिसाब-किताब रखने की रीति के अनुसार गणित पढ़ावें; क्योंकि उनको पैसा, एकन्नी, चवन्नी और रुपया का आपस का सम्बन्ध भली भाँति मालूम रहता है।

महाजनी हिसाब-किताब अङ्क के बजाय खड़ी, बेड़ी और पड़ी रेखाओं में रखा जाता है। गणित सीखना आरम्भ करने वाले के लिए रेखा में रखा सिखाना, घटाना और बढ़ाना अत्यन्त साधारण और सरल है। परन्तु प्रायः आरम्भ में अङ्कों का जोड़ और बाकी समझना कठिन है। चूंकि पहले दिन से ही पढ़नेवाले रेखाओं के जोड़ को आसानी से लगा सकते हैं, इसलिए उनके हृदय में एक तरह का विश्वास पैदा हो

जायगा कि गणित कोई कठिन विषय नहीं है। इस विषय को हम आसानी से पढ़ सकते हैं और दिन प्रतिदिन कुछ उपयुक्त ज्ञान भी सीख सकते हैं। पाठ्यविषय में विद्यार्थियों का विश्वास उत्पन्न करना तथा उसे स्थिर रखना शिक्षा-शास्त्र का प्रधान तत्त्व है।

महाजन लोग आमतौर से अपनी रोकड़-बही का हिसाब इसी रीति से रखते हैं। इसलिए इस तरीक़े पर गणित सीखने से छात्र महाजनों से व्यवहार करना आसानी से सीख सकेंगे— उनके लेन-देन का सम्बन्ध भी जान सकेंगे। इसी तत्त्व को ध्यान में रखकर श्रीनिडिग्री ने एक हिसाब की किताब तैयार की है।*

संख्याओं का जोड़ लगाने में 'हासिल' का तत्त्व समझना आरम्भ में कठिन हो जाता है। बहुत दिनों तक पढ़ने-वाले उसके मूल तत्त्व को नहीं समझ पाते। देहात के किसान, पैसे से आना, आने से चवन्नी और चवन्नियों से रुपयों का सम्बन्ध अच्छी तरह जानते हैं। उनको समझाया जाय कि खड़ी, बेंड़ी और पड़ी में रेखाएँ सिक्कों का मान बतानी हैं। पैसे में पैसा, आने में आना, चवन्नी में चवन्नी, रुपये में रुपया रखने के लिए पृथक्-पृथक् खाने बने हैं। इस तरह वे जोड़ और बाक़ी लगाने में 'हासिल' का मतलब शीघ्र ग्रहण कर लेंगे। उनसे कहा जाय कि देखो—१), १०), १००) और १०००) के नोटों के ये फुटकल खाने बने हैं, तो संख्याओं में स्थानों का ज्ञान उन्हें आसानी से हो सकेगा। स्थान का ज्ञान होने के बाद, इसी प्रकार इकाई, दहाई, सैकड़ा, हज़ार आदि का ज्ञान भी उन्हें सरलतापूर्वक दिया जा सकता है।

") " इस चिह्न को हँसिया के नाम से पुकारिये और

---

* देखिये, सरल ग्राम्य अर्थमेटिक।

पढ़नेवाले को समझाइये कि हँसिया के दाहिने तरफ़ की खड़ी पाई से पैसे का बोध होता है। एक खड़ी पाई से एक पैसा, दो पाई से दो पैसा और तीन पाई से तीन पैसा होता है। यदि बाईं तरफ़ '—' पाई होगी, तो वह आने के नाम से पुकारी जायगी। एक पड़ी पाई से एक आने का बोध होता है, जो आजकल हँसिया के भीतर बनाई जाती है। इस प्रकार केवल तीन पड़ी पाई लिखी जा सकती हैं और इसके पश्चात् हँसिया के भीतर एक खड़ी पाई, एक चवन्नी, दो खड़ी पाई दो चवन्नी और तीन खड़ी पाई तीन चवन्नी की द्योतक मानी जाती हैं। यदि पूर्णांक लिखा जायगा, तो उससे रुपये का ज्ञान होगा। इसी तरह मन, सेर, छटाँक, बीघा, बिस्वा आदि को भी समझाइये।

पहले पहल विद्यार्थी को ४, ५, १२, और १६ का पहाड़ा क्रम से पढ़ाइये। इसके बाद उन्हें शेष का पहाड़ा बतलाइये; क्योंकि आगे इसकी आवश्यकता पड़ती है। आवश्यकतानुसार वस्तुओं का ज्ञान कराना आधुनिक मनोविज्ञान का सिद्धान्त है।

हिसाब पढ़ाने के लिए अध्यापकों को कुछ मोटी-मोटी सूचनाएँ

(१) बच्चे तथा प्रौढ़ किसानों को आरम्भ में गणित पढ़ाते समय केवल मानसिक संख्याओं का हिसाब पढ़ाना कठिन होता है। जैसे—१५ में १२ जोड़ो या घटाओ। यह जोड़ और बाक़ी उनके लिए कुछ कठिन होगा। लेकिन यदि यही प्रश्न इस ढंग से दिया जाय कि राम के घर से १५ गुड़ की भेलियाँ और सोहन के यहाँ से १२ भेलियाँ आईं, तो कुल कितनी भेलियाँ हुईं? तो वे इसका उत्तर आसानी से दे सकेंगे। इसी प्रकार बाक़ी निकालना भी संख्याओं के साथ पदार्थ मिलाकर समझाना चाहिए।

(२) लम्बी-चौड़ी संख्याओं का जोड़, बाक़ी, गुणा और भाग देहात के प्रौढ़ों को पढ़ाना बेकार है। उन्हें हज़ार तक की संख्याओं का ज्ञान काफ़ी होगा।

(३) किसानों को भिन्न का ज्ञान देने की आवश्यकता नहीं है। यदि आवश्यकता पड़े, तो उन्हें सूद आदि का ज्ञान दशांश की रीति से देना अधिक अच्छा होगा।

(४) हास्यास्पद उदाहरण न दिये जायँ। जैसे—

अ—एक आदमी ५॥ .फ़ुट ऊँचा है। जिसका वज़न १३५ पौंड है। यदि उसकी स्त्री ५ .फ़ुट ऊँची हो, तो उसका वज़न क्या होगा ?

ब—आठवें हेनरी की ७ स्त्रियाँ थीं, तो चौथे हेनरी की कितनी स्त्रियाँ हुई होंगी ?

स—एक आदमी नदी पार कर रहा था। पाँच .फ़ुट जाने के बाद उसको दो .फ़ुट गहरा पानी मिला, तो पचास .फ़ुट जाने के बाद उसको कितना गहरा पानी मिलेगा ?

द—माधवपुर से किशनपुर पाँच मील दूर है। एक आदमी माधवपुर से किशनपुर दो घंटे में पहुँच जाता है। यदि चार आदमी इकट्ठा निकलें, तो कितनी देर में पहुँचेंगे ?

इ—चौबेजी की चोटी दो .फ़ुट लम्बी है, तो दुबेजी की चोटी कितनी लम्बी होगी ?

फ—चार वर्ष के एक लड़के के दो हाथ हैं, तो आठ वर्ष के लड़के के कितने हाथ होंगे ?

(५) उदाहरणों की बनावट ऐसी वस्तुओं के द्वारा हो, जो उनके दैनिक कारोबार से सम्बन्ध रखती हों। जैसे—आम, ककड़ी, खीरा, औज़ार और अनाज आदि।

पाँचवाँ अध्याय

अध्यापकों के काम की बातें

विगत अध्याय में प्रौढ़ पाठशालाओं की असफलताओं के कारणों का विस्तार-पूर्वक वर्णन हो चुका है। इस अध्याय में हम उनकी व्यवस्था, प्रबन्ध, शिक्षकों की नियुक्ति, उनकी ट्रेनिङ्ग, पाठ्य-पुस्तकें और समय-विभाग आदि पर विचार करेंगे। इस सम्बन्ध में यदि हम श्रीमांडिजी के अनुभव ही लिखें, तो वे अधिक बोधप्रद और मनोरंजक होंगे।

१—प्रौढ़-पाठशालाओं का मन्तव्य

एक स्थान पर हमने लिखा है कि अध्यापक लोग प्रौढ़-पाठशाला को स्कूल के नाम से भूलकर भी सम्बोधित न करें। यह केवल इसलिए कि पाठशाला का नाम सुनकर प्रौढ़ लोग भयभीत होंगे और उससे दूर रहने का विचार करने लगेंगे। इसलिए हम जिसे आज प्रौढ़-पाठशाला कहते हैं, उसे देहात में इस नाम से चलाना ठीक नहीं है। पहले ही से हमें उसे एक सर्वप्रिय सामाजिक संस्था का रूप दे देना चाहिए, जिसमें गाँव के लोग, ऊट-पटाँग तथा प्रसंगानुसार आनेवाली समस्याओं पर वाद-विवाद कर सकें और जहाँ ग्रामवासी सानंद बैठकर हँसी-मज़ाक करके अपनी थकावट दूर कर सकें। कहना न होगा कि उनको ऐसे अनियन्त्रित अधिवेशनों से बहुत-कुछ ज्ञान भी प्राप्त होगा। अतएव प्रौढ़-पाठशालाओं को जनता के कल्याणार्थ सर्वप्रिय संस्था का रूप देना ही अधिक श्रेयस्कर होगा। इस संस्था को हम भजन-

मंडली के नाम से पुकारें तो देहात के रहनेवाले सहज ही उससे प्रीति करने लगेंगे। पर विवशता के कारण हम इन्हें प्रौढ़-पाठशाला के नाम से ही सम्बोधित करते हैं। इसका पहला कारण तो यह है कि पठित समाज में 'प्रौढ़-पाठशाला' शब्द अत्यधिक प्रचलित है। दूसरी लाचारी यह है कि हमें भजन-मंडली के द्वारा प्रौढ़ों को साक्षर भी बनाना है। उन्हें अन्य पाठशालाओं की भाँति नागरिकशास्त्र, इतिहास, भूगोल आदि विषयों का लगभग वैसा ही ज्ञान अन्य रीति से देना है। लेकिन प्रौढ़-पाठशाला का सच्चा सम्बन्ध सामाजिक संस्था या भजन-मंडली से ही पूर्ण हो सकता है। हम अध्यापकों को यह बतला देना चाहते हैं कि इन प्रौढ़-पाठशालाओं के द्वारा साक्षरता और अन्य विषयों के ज्ञान का कार्य्य एक वर्ष में समाप्त हो जायगा। पर हमारी भजन-मंडलियाँ चिरकाल तक ज्यों-की-त्यों बनी रहेंगी। जब एक वर्ष में नियमित रूप से पढ़ाई पूर्ण हो जाय तब उन प्रौढ़-पाठशालाओं के छात्र इस भजन-मंडली के सदस्य बन जायँ और प्रौढ़-पाठशाला के सदस्य मन्दिर में, सप्ताह में एक बार, गाने-बजाने के लिए एकत्रित हों। गाँव के छोटे-मोटे झगड़े भी उसी में तय करें। कभी-कभी अखाड़ों में कुश्ती, खेतों में कबड्डी आदि खेल भी खेले जायँ। अधिकतर सायंकाल एक घंटा आल्हा, कथा, भागवत और विश्राम-सागर वग़ैरह का पठन-पाठन हो और लोग गाँव में स्थापित वाचनालय से लाभ उठाएँ। प्रौढ़ लोग मन्दिर में दुनियाँदारी की बातें, वादविवाद एवं पंचायतें भी करें। प्रौढ़-पाठशाला-मन्दिर में किसानों को तम्बाकू पीने की मनाही न रहे। मन में सदा यही विचार रक्खा जाय कि थके-माँदे किसान लोग मनोरंजनार्थ ही यहाँ आते हैं। लेकिन अध्यापकों को यह याद रखना चाहिये कि छात्र शिक्षा-काल में चिलम या हुक्का न पियें और ढीले-ढाले बेहूदा ढँग से न

बैठें। जब तक अध्यापक पढ़ाता रहे तब तक वे सभ्यता के साथ काम करें।

किसी गाँव में प्रौढ़-पाठशाला खोलते समय बहुधा देखा गया है कि इसमें १५ से २५ साल तक के व्यक्ति पढ़ने की अधिक उत्सुकता प्रदर्शित करते हैं। इसके विपरीत हमारा अनुभव है कि कहीं-कहीं ६ वर्ष के बच्चे और ५० साल के बूढ़े तक एक साथ पढ़ते हैं। हमारी समझ में १५ या १६ वर्ष से कम अवस्था वाले लड़के प्रौढ़-पाठशाला में कुनई न पढ़ाये जायँ। १६ से ४० वर्ष की उम्रवाले ही पढ़ें। ४० के ऊपरवाले यदि ख़ुशी से पढ़ना चाहें तो भले ही पढ़ें। १५ साल से कम उम्रवाले बच्चे न पढ़ाये जायँ। इस प्रतिबन्ध का मुख्य कारण यह है कि बहुत से बच्चे कुशाग्र बुद्धि के और सयानों में दो-चार बुद्धू भी आते हैं। किसी अवसर पर कुछ प्रश्नों के जवाब बच्चे तो दे देते हैं, पर बुद्धू प्रौढ़ नहीं दे पाते। उस समय सब छात्र हँसने लगते हैं। उसका फल यह होता है कि विशेषतया जिन प्रौढ़ों के लिए ये पाठशालाएँ खोली गई हैं, वे उसे छोड़ बैठते हैं। असमान अवस्था वालों छात्रों के सामने अध्यापक सभी प्रकार के भाव नहीं प्रकट कर सकते; क्योंकि कुछ विचार बच्चे के लिए अनावश्यक हैं और कुछ उनकी समझ के बाहर होते हैं। अध्यापक बच्चों के सामने विनोद भी नहीं कर सकते। यदि करते हैं तो मानो वे उन्हें बेशर्मी का सबक़ पढ़ाते हैं। यह चलन बहुत भद्दा है। पाठशाला में अश्लील विनोद न होना चाहिए। ऐसी दशा में हमारे प्रतिबन्ध का पालन कड़ाई के साथ किया जाय। कहीं-कहीं रात्रि-पाठशालाओं में लड़कियाँ भी पढ़ाई जाती हैं। यह भी उचित नहीं है।

२—विद्यार्थियों की संख्या

कितने छात्रों को एक अध्यापक पढ़ा सकता है यह बात

भी जानने योग्य है। २० से अधिक लड़के एक अध्यापक नहीं पढ़ा सकता। प्रौढ़ों की रजिस्टर में लिखित संख्या १५ से कम न होनी चाहिए। अध्यापक उन्हीं छात्रों को भर्ती करें, जो इस बात की प्रतिज्ञा कर लें कि वे वर्ष भर, प्रति दिन, डेढ़ घंटा, सब काम छोड़कर, पाठशाला में उपस्थित रहेंगे। जिनके प्रतिदिन आने का भरोसा न हो, उन्हें वे धोखे से भी अपनी इस पाठशाला में भर्ती न करें। जहाँ तक सम्भव हो, १८ से ३० साल की उम्र तक के आदमी पढ़ाये जायँ। इससे अध्यापकों को अधिक सफलता मिलेगी।

३—प्रौढ़ों से फ़ीस ली जाय या नहीं

हमारा विचार है कि प्रत्येक प्रौढ़ से आध आना मासिक फ़ीस लेना उचित होगा। इसका अर्थ यह नहीं कि फ़ीस की रक़म से ही छात्रों को पाठ्यपुस्तकें या अध्यापकों का वेतन दिया जायगा। हम फ़ीस लगाने की सिफ़ारिश दो कारणों से कर रहे हैं—(१) मनुष्य-स्वभाव ही ऐसा है कि वह मुफ़्त मिली हुई चीज़ की क़द्र नहीं करता। (२) हमारा अनुभव है कि जब तक फ़ीस नहीं ली जाती, तब तक छात्र लोग स्कूल आने में हीला-हवाला करते रहते हैं। लेकिन जब उन्हें फ़ीस देनी पड़ती है, तब वे प्रति दिन हाज़िर रहते हैं; क्योंकि वे पढ़ने में कुछ ख़र्च करते हैं। मसौदा शिक्षा फ़ैज़ाबाद में जब तक निश्शुल्क प्रौढ़-शिक्षा का प्रचार रहा, तब तक उपस्थिति असंतोष-जनक रही। लेकिन सशुल्क कर देने पर, थोड़े ही दिनों में, उपस्थिति संतोषप्रद हो गई। क्योंकि जब कभी १८ या २० साल का लड़का पढ़ने नहीं जाता था, तब उसके माँ-बाप उसे डाँटकर कहते थे कि "हम तुम्हारे पढ़ाने के लिए फ़ीस देते हैं और तुम इधर-उधर घूमते हो!"

विद्यार्थियों को समझा दिया जाय कि वे केवल साक्षर बनने तक ही चन्दा न दें, बल्कि हमेशा अपने मंडल के लिए दो पैसा देते रहें। उससे वे मंडल के लिए जाज़िम, ढोल और मजीरा आदि मँगा सकेंगे। इसी रक़म से समाचार-पत्र तथा अन्य किताबें मगाई जायँ, जिससे देहात के प्रौढ़ वाचनालय से पूरा-पूरा लाभ उठा सकें। फ़ीस लगाने का एक उद्देश्य हमारा यह भी है।

४—किस समय पढ़ाया जाय

पाठशाला के समय का निर्णय अत्यन्त आवश्यक है। बहुधा देखा गया है कि समय-निर्णय के अभाव में प्रौढ़-पाठशालाएँ बन्द हो गई हैं। कहीं-कहीं अध्यापक ७॥ बजे से प्रौढ़-पाठशालाएँ जारी करते हैं। आरंभ में प्रौढ़-पाठशाला खोलते समय छात्रों से कहा जाता है कि शिक्षा का कार्य्य ७॥ बजे से प्रारम्भ होगा। वह शुरू तो ७॥ बजे करते हैं और चलाते हैं ११ बजे तक। नतीजा यह होता है कि जो लड़के पहले आ जाते हैं वे उकता-कर चले जाते हैं और जो पीछे आते हैं, वे लाभ उठाते हैं। कुछ दिनों के बाद यह आक्षेप होता है कि पाठशाला में बहुत समय व्यतीत हो जाता है।

स्कूल का समय निश्चित न होने से लड़के बहुत विलम्ब से आना प्रारम्भ कर देते हैं। जहाँ साढ़े सात बजे का समय रहता है वहाँ साढ़े नौ बजे तक धीरे-धीरे लड़के इकट्ठा होते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि शिक्षक स्वयं वक़्त की पाबन्दी नहीं करते। पाठशाला का समय अनिश्चित रहने से अध्यापक और छात्र दोनों को क्षति उठानी पड़ती है। देहात के आदमी वक़्त पर आना नहीं जानते। क्या यह शिकायत सच्ची है? नहीं, अगर उन्हें रेलगाड़ी पर चढ़कर कहीं अन्यत्र जाने का

मौका आता है और मालूम रहता है कि गाड़ी ५ बजे छूटती है तो वह ठीक समय पर वहाँ पहुँच जायेंगे, कभी चूकेंगे नहीं। अतएव विद्यार्थियों में समय पर काम करने की आदत उत्पन्न करने के लिए छात्रों को समझा दिया जाय कि शिक्षा केवल डेढ़ घंटा होगी। यह समझ लेने पर वे गृहस्थी के सब कार्य्यों से निवृत्त होकर आयेंगे। यदि भोजन तैयार न होगा तो घर में कह देंगे कि डेढ़ घंटे के पश्चात् भोजन करेंगे। अध्यापक डेढ़ घंटा के बाद किसी को स्कूल में न बैठने दें, न पाठशाला के समय के बाद एक मिनट अधिक पढ़ायें।

५—पाठशाला का प्रारम्भ

शिक्षण-कार्य्य आरम्भ करने से आधा घंटा पूर्व घंटा बजाकर ऐसी सूचना दें, जिससे सभी छात्र समझ जायँ कि आध घंटे हो में शिक्षा प्रारम्भ होनेवाली है, और वे सब काम छोड़ कर स्कूल आने के लिए तैयार हो जायँ। दूसरा घंटा ५ मिनट पहले बजाया जाय। इस संकेत पर तैयार हुए छात्र घर से निकलकर स्कूल आ जायेंगे। तीसरा घंटा बजाकर प्रार्थना प्रारम्भ कर दी जाय। प्रार्थना का समय ५ मिनट से अधिक न हो। प्रार्थना होने के पश्चात् तुरन्त हाज़िरी भर ली जाय। विलम्ब से आनेवाले छात्रों को स्कूल के अन्दर न बैठने दें। शिक्षक समय की उपेक्षा करनेवाले लड़कों को विनयपूर्वक समझा दे कि कल आओ, तब पढ़ावेंगे। अध्यापक इस नियम पर अटल रहे, तो उसे अन्त में हर समय आराम मिलेगा और डेढ़ घंटे से अधिक उसे अपना वक्त नहीं ख़र्च करना पड़ेगा। शिक्षक को चाहिए कि वह अपने शिष्यों को समय-पालन का महत्त्व समझा दे।

अध्यापकों की बहुधा यह शिकायत सुनने में आती है कि

हमें घड़ी नहीं दी जाती ; हम समय की पाबन्दी कैसे करें? आजकल ५) में अच्छी घड़ी मिल जाती है। प्रौढ़-पाठशाला के व्यवस्थापक को चाहिए कि वह प्रत्येक अध्यापक को ५) की घड़ी देने का प्रबन्ध कर दे। ५) को बचत करने में हाज़िरी व पढ़ाई दोनों में गड़बड़ी होगी।

अब यहाँ यह प्रश्न पैदा होता है कि डेढ़ घंटे का समय कब से कब तक का होना चाहिए। सब से अच्छा ढँग तो यह है कि अध्यापक प्रतिमास की पहली तारीख़ को अपने छात्रों से पूछ कर समय निश्चित करे। जाड़े के महीने में वे छः या सात बजे, वर्षा में साढ़े सात बजे और ग्रीष्म में ८ बजे पढ़ना पसंद करेंगे। प्रतिमास छात्रों के द्वारा निर्णीत समय मोटे अक्षरों में लिखकर सूचना-पट पर चिपका दिया जाय, ताकि निरीक्षक महाशय को, आते ही, पाठशाला-समय का ज्ञान हो जाय। समय निर्णय की सभा नियमानुसार प्रतिमास करनी चाहिए और उसके प्रस्ताव को कार्यवाही-पुस्तक पर लिख देना चाहिए।

६—समय-विभाग

शिक्षा का कार्य्य ठीक रीति से चले और विद्यार्थी तथा अध्यापक का समय व्यर्थ न जाय, इस अभिप्राय से समय-विभाग का होना अत्यन्त आवश्यक है। प्रौढ़-पाठशाला में शिक्षा का समय केवल डेढ़ घंटा रक्खा गया है। इससे अधिक समय लेने का अर्थ छात्रों में समय का अजीर्ण पैदा करना है। इस डेढ़ घंटे में, अध्यापकों से आशा की जाती है कि वे शिक्षण-कार्य्य अविराम परिश्रम से करेंगे। सप्ताह में मङ्गलवार रामायण के गाने-बजाने का दिन निश्चित किया गया है। यदि आवश्यकता हो, तो प्रति सप्ताह इतवार को स्कूल बन्द रक्खा जाय। शेष ५ दिनों के लिए काल-विभाजक-चक्र अध्यापक अपनी

सुविधा के अनुसार बना लें। फिर उसी के अनुसार बराबर कार्य्य-रत रहें।

७—पाठ्य-क्रम

पाठ्य पुस्तकें :—प्रौढ़-पाठशाला का पाठ्यक्रम एक साल के लिए बना है और वह चार खण्डों में विभाजित है। इन खण्डों को हम सीढ़ी नाम से सम्बोधित करेंगे। इस सीढ़ी का काम साधारणतः तीन मास में समाप्त हो जाना चाहिए।

पहले तीन मास का अभ्यास-क्रम

आरम्भिक १६ भजन चार्टों का पढ़ना। अक्षर एवं मात्राओं का पूर्णज्ञान और संयुक्ताक्षरों का साधारण ज्ञान डेढ़ मास में करा देना चाहिए।

भजनों की एक सुन्दर पुस्तक, जिसमें भिन्न भिन्न कवियों के २४ पाठों में उत्तम भजन दिये हैं, धारा प्रवाह पढ़ाये जायँ। हस्तलेख की कापी पर पठित भजनों को देखकर संठा की कलम से लिखना। हिसाब—पैसा, आना, पाई, बीघा, बिस्वा, बिस्वांसी, मन, सेर, छटाँक इत्यादि की जोड़-बाकी पाई द्वारा बताई जाय तथा चार, पाँच, बारह और सोलह के पहाड़े याद कराये जायँ।

दूसरे तीन मास का अभ्यास-क्रम

निम्नलिखित ७ किताबों में से सीढ़ी नं० २ में इच्छानुसार चुनी हुई दो किताबें, सीढ़ी नं० ३ में तीन किताबें और सीढ़ी नं० ४ में शेष दो तथा सरल नागरिक शिक्षा पढ़ायी जाय।

नोट—इस विषय में श्रीमान् ए० बी० मारडे एम० ए० द्वारा लिखी गई सरल ग्राम्य अर्थमेटिक नामक किताब द्रष्टव्य है।

स्वीकृत पाठ्य पुस्तकें

१—सरल रामायण। लें०—पं० विद्याभास्कर शुक्ल
२—सरल महाभारत। लें०—" " "
३—पौराणिक कथाएँ। लें०—तथा श्री ए० बी० मांडे एम् ए०
४—ऐतिहासिक कहानियाँ भाग प्रथम। लें०— "
५—ऐतिहासिक कहानियाँ भाग द्वितीय। "
६—ज़मीन-आसमान की बातें। "
७—भारत के मशहूर स्थान "
८-९—सरल नागरिक शिक्षा। लें०—श्रीयुत ए० बी० माण्डे एम्० ए० तथा पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी

उपर्युक्त नव पुस्तकें नव महीने के अन्दर प्रौढ़ छात्र समाप्त कर सकते हैं; क्योंकि ये पुस्तकें मोटे अक्षरों में सरल, सरस और चटकीली भाषा में लिखी गई हैं। पृष्ठ भी ५० या ६० से अधिक नहीं रक्खे गये। हम सिफ़ारिश करते हैं कि नम्बर एक से पाँच तक की किताबें धीरे-धीरे प्रथम वा द्वितीय सीढ़ी में और शेष दो तथा सरल नागरिक शिक्षा तृतीय और चतुर्थ सीढ़ी में पढ़ायी जायँ। प्रत्येक पाठशाला के लिए उक्त पाँच पुस्तकें देने का प्रबन्ध होना चाहिये।

समय-विभाग-चक्र में मंगल का दिन गाने बजाने के लिए रखा जाता है। उस दिन पहली सीढ़ी में उत्तीर्ण होकर दूसरी सीढ़ी में पढ़नेवाले छात्र "हनुमान चालीसा" का पाठ करें और यदि बन पड़े, तो साज़-बाज़ के साथ इसका गायन भी हो। अध्यापक तृतीय सोपान में सुन्दरकाण्ड रामायण, मय अर्थ-प्रसंग समझाते हुए, पढ़ें और पढ़ावें।

रामायण आदि पढ़ाने का ढंग—अध्यापक पहले पूरी चौपाई पढ़ें। पढ़ते समय थोड़ा-थोड़ा अर्थ समझाता चले। जिस समय

अध्यापक पढ़कर सुनाता और अर्थ समझाता हो, उस समय छात्र रामायण की वही चौपाई किताब में देखते रहें। इसके बाद कक्षा में दो टोली बनाकर गवाया जाय। प्रौढ़-छात्र किताब की चौपाई पढ़कर गाते रहें। अध्यापक उस समय एक टोली में शामिल रहे और यदि बन पड़े, तो स्वयम् ढोल बजाये।

मंगल के दिन पढ़ना सिखाने के लिए यह कार्य्य-क्रम काम में लाया जाय। ऐसा करने से प्रौढ़-छात्रों में रामायण पढ़ने की अभिरुचि बढ़ेगी। यदि सिलसिले से यह ढंग चलता रहा तो 'सुन्दर काण्ड' ही क्या, हमारा तो विश्वास है कि प्रौढ़ छात्र नौ महीने में अर्थ समझते हुए आधी रामायण समाप्त कर डालेंगे। रामायण की एक प्रति चार प्रौढ़ छात्रों के बीच देना उचित जान पड़ता है। इस प्रकार हम हर पाठशाला के लिए ५ प्रतियाँ देने की आवश्यकता समझते हैं।

लिखना : द्वितीय सीढ़ी—दी हुई कापी पर "हनुमान चालीसा" की नक़ल करना। अध्यापक अपने प्रौढ़-छात्रों में ऐसा भाव उत्पन्न करें कि सुन्दर अक्षरों में "हनुमान चालीसा" लिखकर अपने किसी इष्ट मित्र को देने में बड़ा भारी पुण्य होता है। पुण्य-प्राप्ति के लोभ से लिखने के ऐसे कार्य्य को प्रौढ़-छात्र प्रसन्नता के साथ करेंगे। पहले साधारण क़ागज़ पर लिखने का अभ्यास कराया जाय और फिर पुण्य-प्राप्ति के लिए बनी हुई कापी लिखने को दी जाय, जिसे वे सुडौल अक्षरों में लिखें और लिखकर किसी मित्र को दे दें।

तृतीय सोपान : शुद्धलेख—अध्यापक आरम्भ में पठित फिर अपठित पुस्तक के किसी भी परिच्छेद को पढ़कर सुना दें और फिर लिखने को कहें।

चतुर्थ सोपान—रसीद, चिट्ठी-पत्री, प्रार्थनापत्र तथा निमंत्रणपत्र आदि लिखने की व्यावहारिक बातें बताई जायँ।

हिसाब : द्वितीय सीढ़ी में—मिश्र अमिश्र संख्याओं का जोड़ बाक़ी. तृतीय तथा चतुर्थ श्रेणी में रोकड़-बही तथा गुणा-भाग पढ़ाकर सरल ग्राम्य अर्थनैतिक नामक किताब समाप्त कराई जाय।

हम पहले लिख चुके हैं कि २० छात्रों के बीच पाँच पाठ्यपुस्तकें दी जायँ। अब यहाँ समस्या यह पैदा होती है कि क्या पाँच किताबों से काम चल सकता है? हम एक एक मेल की पाँच किताबें कुछ दूसरे विचार से देना पर्याप्त समझते हैं। इस सम्बन्ध में हम अध्यापकों को एक परामर्श देना चाहते हैं। वह यह कि वे "डाल्टन प्लेन" से मिलते-जुलते तरीक़े से पढ़ावें। मानसिक शक्ति के अनुसार वे पाँच-पाँच लड़कों की टोलियाँ मुक़र्रर कर दें। अपनी पाठशाला में ऐसी ही तीन या चार टोलियाँ बनाएँ और उनका नाम रख दें राम-टोली, भीमटोली, अर्जुनटोली तथा प्रतापटोली आदि। बुद्धिमत्ता तथा पढ़ने-लिखने की योग्यता की दृष्टि से प्रत्येक टोली के छात्र समयोग्यता के हों। प्रति मास प्रति टोली के छात्र पढ़ने के लिए किताब चुनेंगे। हर एक टोली के छात्र अपनी शक्ति के अनुसार कितना पढ़ सकेंगे, यह देखकर अध्यापक इच्छानुसार पाठ निश्चित कर दें। उसे वे ठेका या अपना स्वीकृत काम समझें। स्वीकृत काम के विषय में कुछ बातें सप्ताह के पूर्व विशेष रूप से उन्हें समझा दें। हर टोली में एक लालटेन और नोटबुक देकर मौन पठन की आज्ञा दे दें। प्रत्येक टोली की जाँच के लिए समय-विभाग के अनुसार दिन निश्चित कर दें। जैसे—कक्षा में राम, प्रताप, भीम और अर्जुन नामधारी चार टोलियाँ हैं। अध्यापक रामटोली के साथ सोमवार, भीमटोली के साथ बुध, अर्जुनटोली के साथ गुरु और प्रतापटोली के साथ शुक्रवार के दिन समय-विभाग का आधा घंटा उनकी सहायता के लिए उनके साथ बैठ

कर व्यतीत करें और टोली के छात्रों से परस्पर प्रश्न पूछने को कहें। इस ढंग के सहारे पारस्परिक प्रश्नों से शिक्षक को यह भी पता चलेगा कि अमुक टोली के छात्रों में कितने विद्यार्थियों ने मनोयोगपूर्वक पाठ पढ़ा है। इस प्रकार टोली को अध्यापक के साथ पढ़ने, या सप्ताह के स्वीकृत कार्य्य को समझने के लिए, कम से कम एक दिन और शेष दिन मौन पठन के लिए मिलते हैं।

अध्यापक को ऐसा करने में प्रतिदिन पाँच या छः शिक्षार्थियों की ओर विशेष रूप से ध्यान देना पड़ता है या यों कहिये कि वह प्रतिदिन केवल पाँच या छः छात्रों को ही पढ़ाता है। इस ढंग के अध्ययन से दो लाभ हैं—

(१) टोलीवार काम करने से सहकारिता बढ़ती है।

(२) टोली सदा प्रयत्नशील रहती और इस बात की कोशिश करती है कि हमारी टोली का कोई विद्यार्थी दूसरी टोली से पिछड़ न जाय।

चतुर अध्यापक महीने में एक दिन ऐसा नियत कर सकता है जिससे एक टोली के लड़के डेढ़ महीने के अन्दर जो कुछ पढ़े हों उसे बयान कर सकें। इससे अन्य टोलियों के लड़कों में प्रतिस्पर्धा उत्पन्न होगी: क्योंकि उनके ऊपर कहानी या पाठ का विषय समझाने का उत्तरदायित्व रहेगा। इस शैली से विद्यार्थी पाठ्य-विषय मन लगाकर पढ़ेंगे। मौन पठन के द्वारा सुपठन का चाव बढ़ेगा। इसके सिवा अपनी हिम्मत पर काम लेकर उसे पूरा करने के लिए आगे क़दम बढ़ाने का उसमें साहस पैदा होगा। यही एक ऐसा साधन है जिससे छात्रों में स्वावलम्बन के साथ पढ़ने की आदत और रुचि बढ़ सकती है।

किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि अध्यापक का कार्य्य बिलकुल सुलभ हो जायगा। नहीं, इसके द्वारा उसके ऊपर मौन पठन से प्रति दिन पाँच या छः लड़कों को बारी-बारी से पढ़ाने की

जिम्मेदारी आती है। उसे सब के ऊपर निगरानी रखनी पड़ती है जिससे वे लोग आपस में बेकार की पंचायत न करने बैठें; बल्कि अपना पाठ पढ़ते रहें। अध्यापक पाठ के अन्त में प्रश्नों के द्वारा जाँच करें कि विद्यार्थियों ने पाठ कहाँ तक पढ़ा है। इसी प्रकार अन्य विषयों का अभ्यास भी एक एक प्रति देकर कराया जाय।

प्रथम सीढ़ी पास होने के पश्चात् प्रत्येक लड़के को 'हनुमान चालीसा' सजिल्द इनाम में दी जाय। इसे देहात के लोग प्रेम भक्ति से पढ़ेंगे। उनका विश्वास है कि "भूत पिशाच निकट नहिं आवै, महावीर जब नाम सुनावै।"

चाहे यह अन्धश्रद्धा ही क्यों न हो। हमें इस विवाद से कोई सरोकार नहीं। इससे हम अपने दो अर्थ पूरा करना चाहते हैं— (१) हम प्रथम, द्वितीय, तृतीय श्रेणी की पठनोन्नति के साथ बढ़िया बढ़िया जिल्द वाली किताब देंगे (२) बढ़िया इनाम पाने के विचार से प्रौढ़-छात्रों में स्पर्धा उत्पन्न होगी।

आशा है, प्रौढ़-छात्र स्नान करने के बाद "हनुमान चालीसा" का दैनिक पाठ करके ही भोजन करेंगे। इससे उनका अक्षर ज्ञान पक्का होगा और उनमें पढ़ने की गति बढ़ेगी।

इसी प्रकार हम दूसरी श्रेणी के उत्तीर्ण छात्रों को सजिल्द सुन्दर काण्ड देना चाहते हैं। तृतीय सीढ़ी सफल होने के अनन्तर अयोध्या काण्ड और चतुर्थ श्रेणी उत्तीर्ण होने पर शेष काण्ड दिये जायँ। रामायण के खण्ड पारितोषिक रूप में देने से प्रत्येक विद्यार्थी के घर रामायण हो जायगी। ऐसा करने से, गाँव में दो प्रतिशत स्त्रियाँ भी रामायण पढ़ सकेंगी। अगर इतना भी लाभ हुआ, तो हम अपना साक्षरता के विषय में किया गया प्रयास सफल समझेंगे।

अन्य शिक्षा

समय-विभाग-चक्र में सप्ताह में तीन दिन सामुदायिक शिक्षा देने के लिए रक्खे जायँ। सामुदायिक शिक्षा से हमारा अभिप्राय सब प्रौढ़-छात्रों को एक साथ शिक्षा देने से है। वह पृथक्-पृथक् न पढ़ाये जायँ। सामुदायिक शिक्षा में छात्रों को नागरिक शास्त्र, पशु-चिकित्सा, प्राथमिक सहायता, गाँव की स्वच्छता, संक्रामक बीमारियाँ तथा कृषि-शास्त्र का सामान्य ज्ञान देना चाहिए। उन्हें मासिक पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ाकर सामयिक ज्ञान देना उचित होगा। ऐसा करने से उनका ज्ञान-कोष दिनों दिन बढ़ेगा।

जब कृषि-सम्बन्धी काम कम हों, तब अध्यापक को चाहिए कि वह अपने शिष्यों में समयानुकूल खेल खिलवावे। जैसे— कबड्डी, पिल्ली, आटापाटा इत्यादि। अवकाश में उन्हें सुन्दर गाने सिखाये जायँ और स्काउटिंग की तालीम भी दी जाय। लेकिन यह सब काम इच्छानुकूल तथा सुविधानुसार ही किये जायँ।

जिस गाँव में अध्यापक पढ़ाता हो, वहाँ वह एक नवयुवक दल की स्थापना करे। उस दल के सदस्यों में सेवा और परोपकार का भाव पैदा किया जाय। उन्हें दीन-दुखियों की दवा आदि करने के हेतु प्रोत्साहन दिया जाय और अपने गाँव की छोटी-मोटी बुराइयों के दूर करने का भार उन्हीं पर डाला जाय।

रजिस्टर

प्रत्येक प्रौढ़-पाठशाला में निम्नलिखित रजिस्टर रहने चाहिए।

(१) रजिस्टर हाज़िरी

(२) प्रौढ़-प्रगति-रजिस्टर

(३) कार्य्यवाही-किताब

(४) रसीद-बुक

(१) रजिस्टर हाज़िरी

इसके बिना तो पाठशाला का कार्य ही नहीं चल सकता। इस लिए यह अत्यन्त आवश्यक है। प्रौढ़ों की हाज़िरी प्रार्थना के बाद तुरन्त भरली जाय। हाज़िरी-रजिस्टर के विषय में श्रीमांडेजी ने बहुत-सी विचित्र बातें देखी हैं। पर विस्तार-भय से उन्हें हम लिखना नहीं चाहते। बहुत से रजिस्टर उन्हें ऐसे देखने को मिले हैं, जिनमें आठ आठ दिन तक हाज़िरी ही नहीं लगाई गई और कुछ ऐसे भी मिले हैं, जिनमें अध्यापक ने इन्सपेक्टर के पूछने पर हाज़िरी भरना शुरू कर दिया है और जल्दी-जल्दी में दोचार दिन आगे को भी हाज़िरी लगा ली है! बहुधा फ़र्जी हाज़िरी भरे रजिस्टर भी देखे गये हैं। छात्रों ने महीनों से स्कूल का मुँह नहीं देखा, पर हाज़िरी, रजिस्टर में वह तीसों दिन हाज़िर है! अध्यापक को ऐसी बातें न करनी चाहिए। सचाई से मुँह मोड़ना मनुष्यता का अपमान करना है। अध्यापकों को चाहिए कि प्रार्थना के बाद जो छात्र आवें, वे उनकी ग़ैरहाज़िरी लगावें और उन्हें सीधे घर जाने को कह दें।

(२) प्रौढ़-प्रगति-रजिस्टर

इसे श्रीमांडेजी ने सन् १९३१ ई० से जारी किया है; क्योंकि निरीक्षण-काल में इस सम्बन्ध की बहुत-सी घटनाएँ उनको देखने को मिली हैं। जब कभी वे किसी स्कूल का मुआयना करने गये हैं, तब उनको उसी एक लड़के का लिखना, पढ़ना, कहानी, दोहा वग़ैरह बार-बार देखने और सुनने को मिला है। उससे आगे कभी कुछ भी नहीं।

प्रौढ़-प्रगति-रजिस्टर के एक पृष्ठ पर छात्र की उम्र, जाति, पिछली जानकारी, तारीख़ दाख़िला, ख़ारिज और उसके कारण वग़ैरह के खाने दिये जायँ और पृष्ठों में वाचन,

लेखन तथा हिसाब इत्यादि के विषय में प्रौढ़-छात्रों की मासिक उन्नति लिखने के खाने रक्खे जायँ। इससे प्रत्येक प्रौढ़-छात्र की मास प्रति मास की उन्नति का हिसाब मिलेगा। तीसरे पृष्ठ पर निर्धारित विषयों का परीक्षा-फल भरने के लिए खाने रक्खे जायँ। प्रौढ़-प्रगति-रजिस्टर हर एक अध्यापक को ईमानदारी के साथ, ठीक-ठीक भरना चाहिए।

कार्य्यवाही रजिस्टर

प्रति मास की पहली तारीख़ को अध्यापक संगीत मंडल का एक जल्सा करे। जल्से में वह नियमानुसार कार्य्यवाही-किताब पर, पाठशाला का प्रबन्ध, फ़ीस, खेल-कूद, गाना-बजाना, नवयुवक-दल के कार्य्य-सम्बन्धी प्रस्ताव लिखे और उन पर बहस करके जो निर्णय निकले, वह भी दर्ज करे। तत्पश्चात् वह सब के हस्ताक्षर ले ले।

चार पाँच मास के बाद जिस प्रौढ़-छात्र ने पढ़ने-लिखने में काफ़ी उन्नति की हो, उसे कार्य्यवाही-किताब लिखने के लिए दी जाय। आवश्यकता पड़ने पर अध्यापक सहायता देता रहे। इस ढंग से एक वर्ष के बाद अपना मंडल किस ढंग से चलाना चाहिए, इसकी ट्रेनिङ्ग देकर सारे मंडल का उत्तरदायित्व उन्हीं पर लाद दिया जाय। यदि हो सके, तो कोआपरेटिव सोसायटी हो अपना मंडल बनाकर उसकी रजिस्टरी कराले।

रसीद और रोकड़ बही

रसीद और रोकड़-बही में पाठशाला की फ़ीस, नवयुवक-दल के लिए किया हुआ चन्दा तथा धर्मार्थ औषधियाँ पाठशाला की मरम्मत और हनुमान-मन्दिर वग़ैरह के लिए जो चन्दे किये जायँ, वे सब रोकड़-बही में लिखे जायँ। एक पैसे तक के चन्दे की रसीद भी काटी जाय।

पाठशाला-भवन

पाठशाला-भवन के लिए किसी प्रतिष्ठित पुरुष की ऐसी चौपाल ही अधिक अच्छी होगी, जहाँ लोग पंचायत, गाना-बजाना और तरह-तरह की बात-चीत निस्संकोच कर सकते हैं। इसके समीप नवयुवकों के लिए एक व्यायामशाला और खेलने के लिए मैदान भी होना चाहिए। हो सके तो अध्यापक प्रौढ़-छात्रों तथा गाँववालों को सहायतासे प्रौढ़-पाठशाला के आस-पास एक छोटी-मोटी फुलवाड़ी भी लगा दें। गाँववालों को वे इस ढंग से समझा दें कि गाँव में कोई साधू, सन्त या किसी के यहाँ बारात आये, तो उसे ठहरने के लिए ऐसी जगहें चाहिए। वे उनसे कहें कि इस चौपाल के आगे-पीछे एक हनुमान-मन्दिर की स्थापना भी होनी चाहिए। इस प्रकार के कार्य्य का प्रभाव जनता पर बहुत अच्छा पड़ेगा।

मसौदा ज़िला फ़ैज़ाबाद में श्रीपांडेजी ने ६ वर्ष काम किया है। उससे उनको अनुभव हुआ है कि ऐसे मुक़दमे, जिनके निप-टारे की कोई आशा नहीं थी, ठाकुरद्वारा या हनुमानजी के चबूतरे में बात-की-बात में तय हो गये। हिन्दू स्वभावतया धर्म-भीरु होते हैं। उनके हृदय में महादेव और हनुमानजी का स्वाभाविक भय होता है। अपने को हिन्दू कहनेवाला कोई ऐसा व्यक्ति न निकलेगा, जो हनुमान-मन्दिर पर बैठकर सचाई से विमुख हो जाय। ऐसे हनुमान-मन्दिर गाँव के छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े झगड़ों को तय करने के लिए सच्चे न्यायालय साबित होंगे।

अध्यापक की योग्यता

अब पाठकों को विदित हो गया होगा कि हम साक्षरता का ज्ञान देने के लिए गाँव-गाँव में मंडलियाँ स्थापित करना चाहते

हैं। ये मंडल गाँवों में उत्तरोत्तर उन्नतिशील ग्राम-सुधार के भावी अङ्कुर हैं, जो कालान्तर में अनुकूल जलवायु से पल्लवित होकर एक विशाल वृक्ष के रूप में परिवर्तित हो जायँगे और उनकी छत्र-छाया में गाँव के लोग अपनी पूर्ण उन्नति कर सकेंगे। हमारी प्रौढ़-पाठशालाएँ जीवन के प्रत्येक अंग में सहकारिता बढ़ानेवाली ऐसी ही सामाजिक संस्थाएँ होनी चाहिए और जिनका सूत्रपात केवल साक्षरता के प्रचार से ही हो जाता है।

शिक्षकों का निर्वाचन

अब शिक्षकों की नियुक्ति का प्रश्न हमारे सामने आता है। वास्तव में हम अध्यापक ऐसे चाहते हैं जो मिडिल तक पढ़ा-लिखा, नीति-पथपर चलनेवाला हो और अपने विचार विद्यार्थियों या दूसरे लोगों को समझा सके और तदनुसार उन पर उचित प्रभाव डाल सके। उसे लड़कों के मनोविज्ञान का ज्ञान रहे या न रहे, पर उसमें नेतृत्त्व-शक्ति तो अवश्य हो। उसके मुख पर गम्भीरता, शरीर में स्फूर्ति, मुद्रा में प्रफुल्लता और मन में नेता बनने की उत्कट अभिलाषा होनी चाहिए। वह संगीत-विद्या का प्रेमी और गाँववालों के साथ भ्रातृ-भाव रखने की प्रकृति रखता हो। वह विद्वान हो, तो ठीक है। पर हमें धुरन्धर विद्वान की आवश्यकता नहीं है। अध्यापक कम-से-कम मिडिल की योग्यता रखता हो—उसे व्याकरण, ज्योमेट्री, बीजगणित भले ही न आती हो, पर देहात के सामाजिक रीति-रिवाज, खेती-पाती और सामयिक ज्ञान का ज्ञाता वह ज़रूर हो।

प्रौढ़-पाठशाला के लिए अध्यापक नियुक्त करते समय हमें डिस्ट्रिक्टबोर्डों के प्राथमिक शालाओं के अध्यापकों का स्मरण हो आता है। लेकिन इसकी विशेष आवश्यकता नहीं है। यदि गाँव में शिक्षा-प्रेमी मिडिल उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण किसी प्रतिष्ठित प्रभाव-

शाली कुटुम्ब का लड़का हो, तो उसका प्रभाव सामान्य जनता पर बहुत पड़ेगा। वह अपने असर से नवयुवकों को प्रौढ़-पाठशाला में खींच लावेगा। उसमें नेता बनने की भावना उत्पन्न होगी। उसे निभाने के लिए उसमें कुछ दिनों के बाद ग्राम-निवासियों की सेवा करने की आदत पड़ेगी और धीरे-धीरे गाँव की गलियाँ चौड़ी कराने, सार्वजनिक सुविधा के मार्ग तैयार करने, कुओं का जीर्णोद्धार करने तथा कृषि के निमित्त उत्तम बीजों का प्रबन्ध करने की योग्यता बढ़ेगी। तात्पर्य्य यह कि ग्राम-सुधार के जितने काम हैं, वह उन्हें पूरा कर लेगा। रहा वेतन का लाभ वह बहुत हुआ, तो एक साल तक मिलेगा। लेकिन स्थानिक प्रभावशाली शिक्षक वेतन के अभाव में काम न बन्द करेगा। पर बाहरी आदमी से ऐसी आशा करना व्यर्थ है। वह तो वेतन न मिलने पर तुरन्त काम बन्द कर देगा।

यदि डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के अध्यापक प्रसन्नता से काम करना चाहें, तो उनकी नियुक्ति में भी कोई आपत्ति न होनी चाहिए। पर उनका चुनाव बहुत सोच-समझकर करना चाहिए। क्योंकि डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के अध्यापकों में ग़ैरहाज़िर रहने की आदतसी पड़ गई है। ग़ैरहाज़िरी और फ़र्ज़ी कार्रवाई तो उनका दैनिक काम हो गया है। सहकारी-विभाग ने पहले पहल डिस्ट्रिक्ट बोर्डों की सहायता से युक्त-प्रान्त में प्रौढ़-पाठशालाएँ जारी कीं। लेकिन डेढ़ साल के अन्दर ही अन्दर बनारस, प्रतापगढ़, लखनऊ वग़ैरह में उनका काम ढीला पड़ गया। फ़ैज़ाबाद में श्रीमांडेजी ने इसके विपरीत कुछ प्रभावशाली ख़ानदानों के सुशिक्षित बेकार लड़कों को अध्यापक बनाया। इसका फल यह हुआ कि प्रौढ़शालाओं का काम तेज़ी के साथ चल निकला।

शिक्षक का वेतन

सम्भव है, इस विषय में पाठकों के मन में यह विचार उत्पन्न हो कि अध्यापकों को माह के अन्त में ५) या १०) की एक निश्चित रक़म वेतन के रूप में दी जायगी। पर श्रीमांडिजी का १० साल का अनुभव तो यह है कि निश्चित वेतन देने से काम ठीक नहीं होता। इसलिए नतीजे के ऊपर प्रति मास एक निश्चित रक़म देना अधिक उचित होगा। इस विधान से कुछ अन्याय न हो, इससे हम पाठकों की इस शंका का निराकरण करने के लिए कुछ विचार उनके सामने रखते हैं।

साधारणतः ५) वेतन और २) तेल का खर्च प्रति प्रौढ़ पाठशाला को देना अनुचित नहीं है। यह व्यय हम इस प्रकार करना चाहते हैं। अध्यापकों को २) निश्चित वेतन और १॥) प्रकाश-व्यय के रूप में दिया जाय। शेष ३) के हिसाब से वर्ष में उन्हें ३६) और मिलने चाहिए। इतना ही नहीं, हम तो उत्तम फल दिखलाने पर ५०) तक देना चाहते हैं। प्रौढ़ पाठशालाओं को सुचारु रूप से चलाने के लिए ही हमने वेतन देने की निम्न व्यवस्था की है—

प्रत्येक प्रौढ़-पाठशाला में २० छात्र रखने का विधान है। इन छात्रों की परीक्षाएँ वर्ष में ४ बार होंगी। यदि अध्यापक प्रति त्रैमासिक परीक्षा के बाद १२॥) पा जाय तो उसे शिकायत करने का कोई मौक़ा न मिलेगा।

अध्यापक १२॥) पाने का अधिकारी कब हो सकता है अब यहाँ यह प्रश्न पैदा होता है। यदि वह २० विद्यार्थियों की सन्तोष-जनक उन्नति दिखा सके, तो उसे प्रति विद्यार्थी ॥=) मिलने का अधिकार है। लेकिन ऐसा होना असम्भव है; क्योंकि परीक्षा के समय कुछ विद्यार्थियों की उन्नति अत्यन्त

सन्तोषजनक कुछ विद्यार्थियों की केवल सन्तोष-जनक और कुछ की सर्वथा असंतोष-जनक भी मिलेगी। इस हिसाब से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण छात्रों के पीछे अध्यापक को प्रति छात्र ।।।), द्वितीय श्रेणी में ।।=) और तृतीय श्रेणी में ।।) देने का आयोजन किया जाय। जिन्होंने कुछ भी तरक्की नहीं की, उनके पीछे कुछ भी न दिया जाय। छात्रों की उन्नति या अवनति पर शिक्षक को जो कुछ देना है उसका निर्णय शिक्षा-विभाग के निरीक्षक कोआपरेटिव बैंक के इन्सपेक्टर या व्यस्थापक करें।

परीक्षा लेते समय श्रेणी में विभाजित कक्षाओं के वाचन, लेखन और हिसाब पर विशेष ध्यान दिया जाय। विशेष जानकारी के लिए प्रौढ़-प्रगति-रजिस्टर का परीक्षा-फल वाला पृष्ठ अवलोकनीय है। उक्त नियम के अनुसार वेतन देने से प्रौढ़-शिक्षा अवश्य सफल होगी। इससे अध्यापक अपना उत्तरदायित्त्व अनुभव करेंगे और इसमें किया जाने वाला व्यय सार्थक होगा। इस ढंग से अच्छा काम करनेवाले अध्यापक को ६०) वार्षिक ही नहीं, सात या आठ रुपया औसत मासिक वेतन भी पड़ सकता है।

शिक्षक की ट्रेनिङ्ग

शिक्षक की नियुक्ति के पश्चात् उसकी ट्रेनिङ्ग का प्रश्न आता है। चाहे वह डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का अध्यापक हो, चाहे गाँव के किसी प्रतिष्ठित पुरुष का शिक्षित लड़का। सब को ट्रेन्ड करने की आवश्यकता है। क्योंकि यह ट्रेनिङ्ग एक विशेष प्रकार की होगी, जिसमें साक्षरता का ज्ञान देने के ढंग के अतिरिक्त सार्वांगिक ग्राम-सुधार का ज्ञान भी दिया जायगा।

हमारे विचार से इस ट्रेनिङ्ग के लिए कम-से-कम एक मास का समय होना चाहिए। इन अध्यापकों को कौन ट्रेन्ड

करेगा और इन्हें अच्छी ट्रेनिङ्ग कैसे दी जा सकती है इसके लिए स्काउट आर्गनाइज़र ही उत्तम ट्रेनिङ्ग मास्टर हो सकते हैं। इनके विषय में सेवासमिति के कमिश्नर श्रीयुत श्रीराम वाजपेयी (इलाहाबाद) से व्यवस्थापक लोग पत्र-व्यवहार करें। वे सुयोग्य ट्रेनिङ्ग मास्टर भेज देंगे। लोग स्काउटिंग, प्रौढ़-पाठशाला और ग्राम-सुधार की खास-खास बातें थोड़े समय में ही बता देंगे। ग्राम-सुधार के इन्स्पेक्टर भी स्वतः बहुत जानकारी रखते हैं। वे स्काउटिंग और ग्रामसुधार की ट्रेनिङ्ग भी पा चुके हैं। उनमें जो योग्य हों, वे इस किताब का अध्ययन करके लाभ उठा सकते और हर माह की पहली तारीख से पाँच तारीख तक इस कार्य्य में आनेवाली आपत्तियों के सम्बन्ध में रजिस्ट्रार कोआपरेटिव सोसायटी, लखनऊ, को पत्र लिखकर अपनी कठिनाइयाँ दूर करवा सकते हैं। सहकारी-विभाग के कर्मचारी सुपरवाइज़र तथा ग्रूप सेक्रेटरी आदि को ट्रेन्ड करने के लिए दौरा एज्यूकेशनल इन्स्पेक्टर पं० जगन्नाथप्रसाद मिश्र, एम० ए० भी सहायता कर सकेंगे। व्यवस्थापक लोग अपना कार्य्यक्रम निश्चित करने में उनसे सहायता ले सकते हैं। हमारी शिक्षा-प्रणाली के लिए विशेष ट्रेनिङ्ग की आवश्यकता नहीं है। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के नार्मल पास अध्यापक यह पुस्तक पढ़कर तुरन्त समझ जायँगे। ग्राम-सुधार के इन्स्पेक्टर, आर्गनाइज़र तथा डिस्ट्रिक्टबोर्ड के अध्यापक, जिन्होंने स्काउटिंग की तालीम पाई है, उनकी सहायता से—यदि प्रौढ़-पाठशाला के संचालक प्रयत्न करें तो—कुछ समय के लिए ज़िले में एक ट्रेनिङ्ग क्लास खोलकर प्रौढ़-पाठशाला के अध्यापकों को ट्रेन्ड कर सकते हैं।

पाठशाला की निगरानी

प्रौढ़-पाठशाला का निरीक्षण सरल नहीं है। पहली कठि-

नाई तो यह है कि ये पाठशालाएँ रात्रि में केवल डेढ़ घंटा लगाई जाती हैं। दूसरे रात्रि का समय होने के कारण यकायक निरीक्षण करने के लिए पदाधिकारी हिचकते हैं और जहाँ अध्यापक के पास घड़ी नहीं होती, या स्कूल का समय नियत नहीं रहता, वहाँ तो निरीक्षक की कठिनाई और भी बढ़ जाती है। ऐसी हालत में निरीक्षक के यकायक पहुँचने पर अध्यापक कह सकता है कि पाठशाला की छुट्टी हो गई अथवा अभी पाठशाला लगाना है।

प्रौढ़-पाठशालाओं की असफलता का मुख्य कारण है सायंकाल, भोजन के पश्चात्, शिक्षक में आराम करने की भावना होना। श्रीमांडेजी ने अकस्मात् पाठशालाओं का निरीक्षण करके देखा है कि अध्यापक महोदय चारपाई पर लेटे हैं और दो शिष्य ढोल लिये हुए नीचे बैठे हैं! इस तरह से न तो प्रौढ़ पाठशालाएँ चल सकती हैं और न उन पर उत्सर्ग किये गये रुपये का सद्व्यय हो सकता है।

इस लांछन से बचने के लिए व्यवस्थापक लोग पाठशालाओं की निगरानी का उचित प्रबन्ध करें। समय-समय पर समुचित निरीक्षण होने से पाठशालाओं की दशा नहीं बिगड़ सकती। इस सम्बन्ध में दो तीन संरक्षण लगाये जा सकते हैं—

(१) गाँवों के केन्द्रित क्षेत्र में प्रौढ़-पाठशालाएँ खोली जायँ और उनकी निगरानी के लिए १५) या २०) वेतन का कोई आर्गनाइज़र नियत कर दिया जाय। वह देखता रहे कि स्कूल ठीक समय पर लगाये जाते हैं या नहीं और उनमें शिक्षा का काम ठीक रीति से चलता है या नहीं। ये आर्गनाइज़र इधर-उधर, दिन में कहीं बैठकर या दौड़ा करके, स्कूलों के बारे में चर्चा करके, उनकी यथार्थ दशा जानते रहें। क्षेत्र के बीच में आर्गनाइज़र के रहने से अध्यापक ठीक समय पर स्कूल लगायेंगे।

ये आर्गनाइज़र शिक्षकों को ग्रामसुधार के सम्बन्ध में मदद-गार रहें। मासिक विवरण नियमानुसार अध्यापक आर्गनाइज़र के पास भेजते रहें और आर्गनाइज़र उनके इकट्ठा हो जाने पर कैफ़ियत के साथ मुख्य व्यवस्थापक के पास भेज दें।

(२) व्यवस्थापक गाँव में प्रभावशाली व्यक्तियों की एक कमेटी बना दें और उनको रुपये के सदुपयोग के सम्बन्ध में अच्छी तरह से समझा दें। उनके द्वारा अध्यापकों के काम की मासिक रिपोर्ट मँगाले।

प्रौढ़-पाठशालाएँ कौन-कौन सी संस्थाएं चला सकती हैं—

१—डिस्ट्रिक्ट बोर्ड

शिक्षा-प्रचार का कार्य्य एज्यूकेशनल कमेटी का है। इस कार्य्य के लिए उन्हें सरकारी आर्थिक सहायता भी मिलती है। उनके यहाँ नार्मल ट्रेन्ड अध्यापक भी हैं। यदि वे अपने अध्यापकों से काम लेना चाहें तो प्रौढ़-शिक्षा में वे इस तरह सहायता पहुँचा सकते हैं—

२—ग्राम-सुधार (Rural development) विभाग

प्रत्येक ज़िले में एक ग्रामसुधार के इन्सपेक्टर और छै आर्ग-नाइज़र्स ग्रामसुधार का काम करते हैं। कम-से-कम ७२ गाँवों में ग्रामसुधार का काम हो रहा है। यदि रूरल डेवलपमेन्ट के द्वारा प्रौढ़-पाठशाला के संचालन का काम कराया जाय, तो भी कार्य्य-सिद्धि की आशा है। उन्हें स्थानीय प्रतिष्ठित पुरुषों के सुशिक्षित प्रौढ़-पाठशाला चलाने के लिए मिल सकते हैं, उन्हें थोड़ा वेतन देकर उनसे काम लिया जा सकता है।

३—सहकारी विभाग

लगभग सब ज़िलों में एक कोआपरेटिव इन्स्पेक्टर और

छः-सात सुपरवाइज़र्स इस विभाग में काम कर रहे हैं। हर ज़िले में सौ से तीन सौ तक सहकारी समितियाँ बनी हैं। जिस सहकारी-समिति के पास मुनाफ़ा-खाते में सौ या एक सौ पच्चीस रुपया है वह समिति अपने गाँव में प्रौढ़-पाठशाला चलाकर बीस प्रौढ़ छात्रों को साक्षर बना सकती है।

४—अन्य सामाजिक संस्थाएँ

प्रत्येक ज़िले में जनसेवक और भक्ति मार्ग पर चलने वाले सज्जन पाये जाते हैं। उनमें कुछ वकील, डाक्टर और गण्य मान्य पुरुष भी होते हैं। ये महानुभाव चाहें तो भजन-मंडली और रामायण के लिए अलग कमेटी बनाकर सामान्य जनता के सूखे हृदय-क्षेत्र पर भक्ति और सदाचार की सरिता प्रवाहित कर सकते हैं। उन्हें देहात में रईस और धनाढ्य पुरुषों से पर्य्याप्त सहायता भी मिल सकती है। पाठशालाओं का निरीक्षण करने के लिए इन संस्थाओं को डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की एज्यूकेशन कमेटी और सहकारी-विभाग से सहायता मिल सकती है।

५—प्रौढ़-पाठशाला का व्यय

अब पाठक समझ गये होंगे कि प्रौढ़-पाठशालाओं के द्वारा अपठित किसानों को सुशिक्षित करने की यह एक व्यावहारिक योजना है। इस कार्य-सिद्धि के लिए धन की बड़ी आवश्यकता है। एक प्रौढ़-पाठशाला को उन्नतिशील देखने के लिए १२५) वार्षिक ख़र्च करने पड़ते हैं। इस हिसाब से एक आदमी को साक्षर बनाने के लिए ६) सालाना पड़ता है। यह भारत की वर्त्तमान आर्थिक दशा देखते हुए कुछ अधिक नहीं है। इसका ब्योरा निम्नलिखित है—

अनुमान-पत्र

१—अध्यापक का वेतन (अनुमानतः ५) मासिक के हिसाब से)	६०)
२—चार लालटेन और उनके शीशों के लिए	६)
३—तेल का ख़र्च (मासिक २) के हिसाब से)	२४)
४—श्याम-पट और फ़्रेम के लिए	७)
५—पुस्तकें, रजिस्टर्स तथा नोट-बुक्स के लिए	२५)
६—फुटकर ख़र्च के लिए	३)
	१२५)

प्रौढ़-पाठशालाओं को देने योग्य पाठ्य-सामग्री

क्र० सं०	नाम सामग्री	संख्या	प्रयोग	विवरण
१	भजन चार्ट	१६	अध्यापकों के लिये	
२	शब्द चार्ट	२००	”	
३	अक्षर कार्ड	४०	”	
४	चार्टों से बना प्राइमर या	२०	विद्यार्थियों के लिए	
५	पहली पोथी	२०	”	
६	हनुमान चालीसा	२०	”	
७	तुलसीदासकृत रामायण	५	”	
८	ऐतिहासिक कहानियाँ पहला भाग	५	”	
६	ऐतिहासिक कहानियाँ दूसरा भाग	५	विद्यार्थियों के लिए	
१०	ज़मीन आसमान की बातें	५	”	
११	भारत के मशहूर स्थान	५	”	
१२	सरल महाभारत	५	”	
१३	सरल रामायण	५	”	
१४	पौराणिक कथाएँ	५	”	
१५	देहाती हिसाब	५	”	
१६	रजिस्टर हाज़िरी	१	”	
१७	प्रौढ़-प्रगति-रजिस्टर	१	”	
१८	कापी कार्यवाही	१	”	
१६	रसीद बुक	१	”	

क्र० सं०	नाम सामग्री	संख्या	प्रयोग	विवरण
२०	रोकड़ बही	१	"	
२१	औसत हाज़िरी वग़ैरह के फ़ार्म्स	१२	"	
२२	स्लिपि कापी	२०	विद्यार्थियों की प्रथम सीढ़ी के लिये	
२३	हनुमान चालीसा की प्रतिलिपि कापी	२०	दूसरी सीढ़ी के लिए	
२४	नोट-बुक	२०	तीसरी सीढ़ी के लिए	
२५	देहाती हिसाब	२०	विद्यार्थियों के लिए	
२६	फ्रेम मय श्याम-पट्ट	१	अध्यापक के लिए	

यह सब सामग्री लाला रामनारायण लाल बुकसेलर्स. इलाहाबाद से मिल सकती है।

APPENDIX A

A representative Chart of the Nagpur Literacy Plan

कलम किसकी है

राम की कलम है

कलम काहे की है

सेठे की कलम है

किस लिये कलम है

कलम लिखने को है

क	ल	म
स	ड़	क
क	म	ल
न	म	क
श	क	र
न	र	क

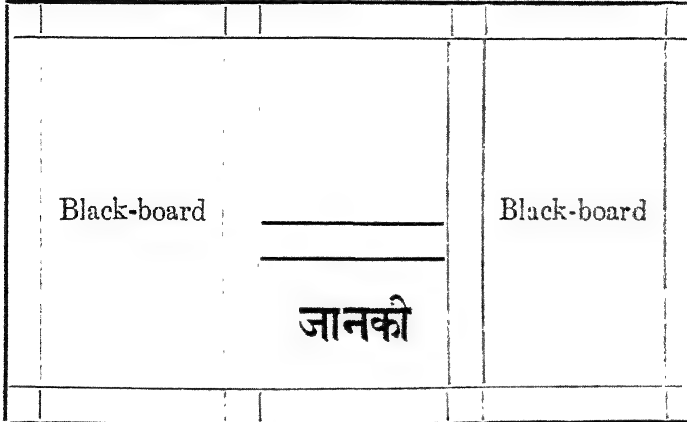
ल	व	ण
ब	द	ल
ल	प	क
प	ल	ई
म	ह	ल
ल	ट	क

म	ट	र
स	म	र
म	र	द
क	र	म
म	र	ज
अ	म	र

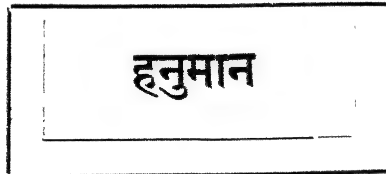
APPENDIX B

The Shantipur Plan

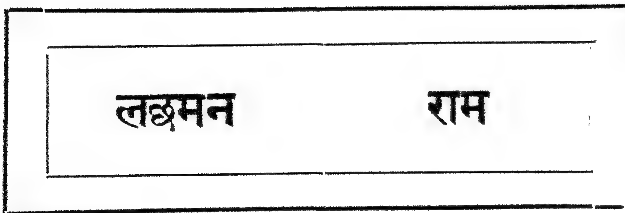
Plan of the sliding frame with a black-board



Slit for fixing word Chart



Sliding frame



APPENDIX C

चार्ट नं० १ Size $27'' \times 17''$

राम लछमन जानकी ।
जय बोलो हनुमान की ॥

चार्ट नं० २ Size $27'' \times 17''$

रघु पति राघव राजा राम ।
पतित पावन साता राम ॥

चार्ट नं० ३ Size $27'' \times 17''$

राम नाम लड्डू, गोपाल नाम घी ।
कृष्णा नाम मिसरी घोर घार पी ॥

चार्ट नं० ४ Size 27″ × 17″

जहाँ सुमति तँह सम्पति नाना । जहाँ कुमति तँह विपति निदाना ॥

चार्ट नं० ५ Size 27″ × 17″

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे । हे नाथ नारायण वासुदेव ॥

चार्ट नं० ६ Size 27″ × 17″

टूट चाप नहिं जुरहि रिसाने । बैठहु होइ है पाँय पिराने ॥

चार्ट नं० ७ Size 27″ × 17″

गोविन्द गोविन्द हरे मुरारे ।
गोविन्द गोविन्द मुकुन्द कृष्ण ॥

चार्ट नं० ८ Size 27″ × 17″

जय रघु नन्दन, जय सिय राम ।
गोपी वल्लभ राधे श्याम ।

चार्ट नं० ९ Size 27″ × 17″

पाँच पंच मिल कीजिय काज ।
हारे जीत न आवे लाज ॥

चार्ट नं० १० Size $27'' \times 17''$

उत्तम खेती मध्यम बान ।
निखिद चाकरी भीख निदान ॥

चार्ट नं० ११ Size $27'' \times 17''$

ढम ढमा ढम ब्याह गिलहरी का है सुनिये आज ।
पोथी पत्रा लेकर चलिए पांडे जी महराज ॥

चार्ट नं० १२ Size 27″ × 17″

बूढ़ा बैल बेसाहै,
झीना कपड़ा लेय ।
आपुन करै नसौनी,
देवै दूषन देय ॥

चार्ट नं० १३ Size 27″ × 17″

चित्रकूट के घाट पर,
भइ संतन की भीर ।
तुलसि दास चन्दन घिसैं,
तिलक देत रघुवीर ॥

चार्ट नं० १४

तुलसी बिरवा बाग में,
सींचे से कुम्हिलाय ।
राम भरोसे जो रहै,
परवत पर हरियाय ॥

चार्ट नं० १५ Size 27" × 17"

राम राम सब कोउ कहै,
दशरथ कहै न कोय ।
एक बेर दशरथ कहै,
कोटि यज्ञ फल होय ॥

चार्ट नं० १६ Size 27″×17″

जो नहिँ जानत राम को,
ताहि न जानत राम ।
पड़ा रहे संसार में,
ज्यों चलनी को चाम ॥

APPENDIX D

मात्रा चार्ट

नं० १

द	द	दादा	दादी
स	ल	साला	साली
म	म	मामा	मामी
क	क	काका	काकी
न	न	नाना	नानी
		ा	ी

लाठी "आ" की मात्रा बनती
पूछो कल्लू गोपो से ।
'ई' की मात्रा कैसे बनती
मिलकर लाठी टोपी से ॥

नं० २

म	र	मार	मोर	मौर
स	र	सार	सोर	सौर
ल	ट	लाट	लोट	लौट
च	क	चाक	चोक	चौक
ब	र	बार	बोर	बौर
		ा	ो	ौ

लाठी एक पंखा से मिलकर
'ओ' का शब्द बनाती है।
दो पंखा से मिलकर लाठी
'औ' की धुन उपजाती है॥

नं० ३

ब ल	बेल	बैल
द व	देव	दैव
स र	सेर	सैर
ब द	बेद	बैद
म ल	मेल	मैल
	े	ै

"ए" ध्वनि पंखा एक उठाती ।
"ऐ" ध्वनि पंखे दो डुलवाती ॥

नं० ४

द	ख	देख	देखा	देखो
ख	ल	खेल	खेला	खेलो
घ	र	घेर	घेरा	घेरो
ख	द	खेद	खेदा	खेदो
ठ	ल	ठेल	ठेला	ठेलो

'ए' का पंखा चीन्हो साथी।
'ओ' की मात्रा पंखा लाठी॥

माता चार्ट

नं० ५		
मै		मौन
कै		कौन
बै	र	बौर
पै	दा	पौदा
पै	न	पौना

'ऐ' देखो दो पंखे लाया ।
'औ' ने लाठी और लगाया ॥

नं० ६

न	ज	निज	निजी
स	र	सिर	सीर
द	न	दिन	दीन
म	ल	मिल	मिली
क	स	किस	किसी
		ि	ी

दोनों लाठी टोपी लावैं
पर आपस में भेद बतावैं ।
छुटकी बायें रहती है
बड़की दायें झुकती है ॥

नं० ७

स	त	सुत	सूत
स	न	सुन	सूना
द	र	दुर	दूर
च	न	चुन	चूना
ग	र	गुर	गुरू
		ु	ू

जब "उ" की मूँछें ऊपर जाती।
तब "ऊ" अपनी स्वयं गिराती॥

APPENDIX E

मिलावट चार्ट

नं० १

ग्वाला	ग्+वाला
ज्यादा	ज्+यादा
स्वाद	स्+वाद
श्याम	श्+याम
पल्थी	पल्+थी

लाठी वाले अक्षर मिलने
अगर किसी से जाते हैं।
सबसे पहले अपनी लाठी
जाकर कहीं छिपाते हैं॥

नं० २

दफ्तर	दफ्+तर
क्यारी	क्+यारी
सुक्खू	सुक्+खू
मुफ्त	मुफ्+त
हुक्म	हुक्+म

दुमदार अक्षरों से मिलावट में उनकी दुम कट जाती है ॥

नं० ३

पट्ठा	पट्+ठा
लड्डू	लड्+डू
द्वार	द्+वार
पङ्खा	पङ्+खा
टट्टू	ट+ट्टू

ऊटपटांग अक्षरों की मिलावट में वे ज्यों के त्यों मिल जाते हैं ॥

नं० ४

उर्द	उर्+द
मर्द	मर्+द
सुर्ख़	सुर्+ख़
मुर्ग़	मुर्+ग़
बर्फ़ी	बर्+फ़ी

'र' यदि पहले आता है।
तो सिर पर चढ़ जाता है ॥

नं० ५

प्राण	प्+राण
अद्रा	अद्+रा
उग्र	उग्+र
बज्र	बज्+र
भ्रम	भ्+रम

'र' जब पीछे आवैगा।
नोचे टांग अड़ावैगा॥

Printed by RAMZAN ALI SHAH at the National Press, Allahabad.